THE OUR ENVIRONMENT

ISROSET®
Disseminator of knowledge
A Place to Publish Outstanding Research

Prof (Dr.) I.P. Tripathi
Dr. Aparna Mishra, Er. Swati Tripathi, Dr. Namrata Dwivedi

ISBN: 978-3-96492-165-9

हमारा बदलता पर्यावरण

लेखक

प्रो. इन्द्र प्रसाद त्रिपाठी
रसायन विज्ञान विभाग
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

डॉ. अर्पणा मिश्रा
वनस्पति विज्ञान विभाग
पं० जवाहर लाल नेहरू कालेज बाँदा (उत्तर प्रदेश)

ई. स्वाती त्रिपाठी
कृषि अभियांत्रिकी विभाग
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

डॉ. नम्रता द्विवेदी
जैवप्रौद्योगिकी विभाग
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

Published By:

ISRSOET®

501, King Tower, Behind Reliance Fresh,
Navlakha Square,
Indore, India - 452001
www.isroset.org

WESER BOOKS

Weser Books, No. 79737
Äussere Weberstr. 57
02763 Zittau,
Germany

Authors: Prof. (Dr.) Indra Prashad Tripathi
Dr. Aparna Mishra
Er. Swati Tripathi and
Dr. Namrata Dwivedi

The author/publisher has attempted to trace and acknowledge the materials reproduced in this publication and apologize if permission and acknowledgements to publish in this form have not been given. If any material has not been acknowledged please write and let us know so that we may rectify it.

Edition: 1st

Publication Year: 2020

ISBN: 978-3-96492-165-9

Pages: 105

Price: € 9/$ 10/Rs.700.00

© Copyright Reserved, 2020

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored, in a retrieval system or transmitted, in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, reordering or otherwise, without the prior permission of the publisher.

Disclaimer

The opinions expressed and figures provided in this book of ISRSOET are the sole responsibility of the authors. The organizers and the editor bear no responsibility in this regard. Any and all such liabilities are disclaimed.

लेखक परिचय

प्रो.(डा.) इन्द्र प्रसाद त्रिपाठी एक रसायनविद् अनुसंधानकर्ता है। प्रो. त्रिपाठी ने नई तकनीकों और विधियों का उपयोग करके एंटीडायबिटिक और एंटीसेप्टिक औषधियों के पारंपरिक ज्ञान व निर्माण विधियों का पुनः मानकीकरण की दिशा में उत्कृष्ट योगदान दिया है। उन्होंने इसके साथ–साथ नवीन कार्बधात्विक यौगिकों का निर्माण कर उनके एंटीडायबिटिक, एंटीआक्सीडेंट, क्षद्म सुपरआक्साइड डिसम्युटेज, मुक्त रिडिकल स्केवेन्जिंग गतिविधियों, उत्प्रेरक व्यवहार आदि लक्षणों पर विस्तृत शोध कार्य किया है। प्रो. त्रिपाठी ने विभिन्न स्पेक्ट्रोस्कोपिक, विर्वतन मापी, आणविक अवशोषण मापी उपकरणो का प्रयोग करके प्राकृतिक प्रोटीन पालक/अण्डे इत्यादि से धात्विक यौगिकों की क्रिया के साथ कार्बन नैनोट्युब्स बनाऐ है।

प्रो. त्रिपाठी पर्यावरण अनुमापन, रासायनिक प्रदूषण का परीक्षण करते हुए हरित रसायन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आपने बुन्देलखण्ड और विन्ध्य क्षेत्र के जल, वायु पर फैलते रासायनिक प्रदूषणों के क्षेत्र मे अभिनव व सराहनीय योगदान दिया है।

प्रो. त्रिपाठी ''सतत विकास मे रसायन विज्ञान की भूमिकाः भारतीय संभावना'' विषय पर संयुक्त अरब अमीरात में तथा प्रयुक्त विज्ञान, इंजीनियरिंग और प्रौधोगिकी विषय पर नेपाल में आयोजित अंर्तराष्ट्रीय सम्मेलन में विभिन्न सत्रों की अध्यक्षता की। उन्होनें ग्रामीण जनता, छात्र, अनुसंधान विद्वानों और वैज्ञानिकों के लिए लगभग 30 राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार और कार्यशालायें भी आयोजित की है।

प्रो. इन्द्र प्रसाद त्रिपाठी एक अच्छे शिक्षाविद् व कुशल प्रशासक है। उन्हें कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है, इनमें प्रो. आर. डी. देशाई 80 वॉ जन्मदिवस अवार्ड, फेलोसिप अवार्ड, वेस्ट साइंस रिसर्च अवार्ड प्रमुख है। प्रो. त्रिपाठी वर्तमान में कई शोध पत्रिकाओं के मुख्य संपादक, और संपादकीय बोर्ड के सदस्य है। डा. त्रिपाठी के राष्ट्रीय व अर्न्तराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में लगभग 175 शोध पत्र प्रकाशित है। संप्रति प्रो. इन्द्र प्रसाद त्रिपाठी, महात्मागाधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना, में पर्यावरण एवं विज्ञान संकाय के अधिष्ठाता व रसायन विज्ञान के आचार्य के रूप में अपना योगदान दे रहे है।

डा. अर्पणा मिश्रा ने वनस्पति शास्त्र विषय में मास्टर डिग्री बुन्देलखण्ड विशविविद्यालय तथा पीएचडी ने ''ए'' क्रेडिटेड महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (मध्यप्रदेश) से प्राप्त की है। पर्यावरण के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करते हुये आपने ख्याति प्राप्त राष्ट्रीय तथा अंतरराष्ट्रीय जनरलों में 41 से अधिक शोध पत्र प्रकाशित किये है। पर्यावरण विषय पर आपकी एक पाठ्यपुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है।

ई. स्वाती त्रिपाठी कृषि अभियांत्रिकी व सिविल अभियांत्रिकी के क्षेत्र मे सराहनीय कार्य कर रही है। आपने कृषि अभियांत्रिकी से बी.टेक. व जल संसाधन अभियॉन्त्रिकी में एम.टेक. करके वर्तमान में जल गुणवत्ता परीक्षण कर उसके प्रबंधन पर सराहनीय शोध कार्य कर रही है। ई. स्वाती त्रिपाठी के इस दिशा में कई शोध पत्र प्रकाशित हो चुके है। ई. स्वाती त्रिपाठी को जल संसाधन के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य करने के लिए युवा वैज्ञानिक पुरस्कार से भी सम्मानित किया गया है।

डा. नम्रता द्विवेदी का जन्म 14 फरवरी 1991 में हुआ आपने प्रारम्भिक शिक्षा रीवा के गर्ल्स हायरसेकण्ड्री स्कूल व न्यु साइंस कालेज से स्नातकोत्तर की शिक्षा पूरी की। आपने अपना शोध कार्य महात्मागांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय से एंटीआक्सीडेटिव व एंटी हाइपरग्लाइसिमिक एक्टिविटी आफ सम प्लान्ट आफ मिरटियेसी फैमिली पर सन् 2019 में पूर्ण कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। डा. द्विवेदी के राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में लगभग 20 शोध पत्र प्रकाशित हैं। आपने उत्कर्ष्ट शोध पर भारतीय विज्ञान अकादमी से 02 पुरष्कार स्वर्णजंयती पुरष्कार एवं स्प्रिगंर युवा वैज्ञानिक पुरस्कार सन् 2019 में प्राप्त किये। डॉ. द्विवेदी की विभिन्न साइंसटिफिक उपकरणों (अवरक्त स्प्रेक्ट्रोफोटोमीटर, क्रोमैटोग्राफी, अल्ट्रावायलेट स्पेक्ट्राफोटोमीटर, मल्टीमोड रीडर इत्यादि) पर गहरी पकड़ है। आपने एंटीडायविटिक दवाओं, प्लांट टीशूकल्वर तकनीक, रॉ डेयरी मिल्क में हार्मफुल माइक्रोअर्ग्रिनिज्म का पता लगाने व फेफडो की A 549 कैंसर सेल लाइन एवं 3T3L1 एडिपोसाइट सेल में शोध कार्य कर उत्कृष्ट योगदान दिया है।

विषय सूची

प्रस्तावना

खण्ड एकः- मानव सभ्यता के पहले का पर्यावरण (प्र.क्र.१-१२)

१. पर्यावरण उद्‌भव एवं विकास
२. हमारा बदलता संसार
३. पर्यावरण एवं जीवो का विलुप्तीकरण

खण्ड दोः- मानव सभ्यता के बाद का पर्यावरण (प्र.क्र.१३-४२)

१. धरती पर मानव का अभ्युदय, सभ्यताओं का विकास
२. ईश्वर प्रकृति और पर्यावरण-प्राचीन चिंतन का आधुनिक विश्लेषण
३. पर्यावरण और प्रकृति
४. प्रकृति से छेड़खानी
५. पर्यावरण का वर्तमान स्वरूप
६. परमाणु आयुधों के उपयोग के बाद की दुनियाँ
७. हरियाली को निगलते विषाक्त कारखानें
८. प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य
९. अनुवांशिक आभियंत्रिकी और पर्यावरण

खण्ड तीनः- प्रकृति संरक्षण (प्र.क्र.४३-८५)

१. प्रकृति संरक्षण की विश्व व्यापी आवश्यकता
२. प्रकृति संरक्षण की विश्व संहिता
३. वन्यजीवन सरंक्षण और सरंक्षण कानून
४. संरक्षित क्षेत्र
५. राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य
६. संकटापन्न जातियो के सरंक्षण हेतु विशेष परियोजनाये
७. जीवमण्डलीय आरक्षण
८. वृक्षारोपण बनाम वृक्ष संरक्षण
९. जल प्रबंधन के सरल उपाय
१०.सहअस्तित्व के लिये प्रार्थना
११.स्वदेशी अवधारण

संदर्भ (प्र.क्र.८६)

प्रस्तावना

धरती पर पर्यावरण इसकी उत्पत्ति के साथ से जुडा है लेकिन आज के हमारे चिन्तन में मूल रूप से मानव जनित पर्यावरणीय कुप्रभावों की दृष्टि है। मनुष्य का धरती पर उद्भव बहुत प्राचीन नहीं है। पृथ्वी आज से कोई ५०० करोड़ वर्ष पहले बनी होगी ऐसा वैज्ञानिक मानते है लेकिन इस पर मनुष्य का उसकी प्रथम उत्पत्ति से अब तक का इतिहास कुछ लाख वर्ष पुराना है। पर्यावरण में पहले निश्चय ही मनुष्य नहीं था और उत्पत्ति के बाद भी काफी समय तक मनुष्य का कुप्रभाव नगण्य था। सभ्यता के बढते चरण के साथ मनुष्य के द्वारा प्रकृति पर विजय की अभिलाषा तीव्रता होती चली गई। फलस्वरूप प्रकृति में अनेक विसंगतियां उत्पन्न हुई। वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को इस बात पर चिन्ता होना स्वाभाविक है और यह पुस्तक इस चिन्ता का परिणाम है। पुस्तक के प्रथम खण्ड में मानव सभ्यता के पहले के पर्यावरण पर दृष्टिपात किया गया है जो अब तक मिले वैज्ञानिक प्रमाणों पर आधारित है। दूसरे खण्ड में मानव सभ्यता के बाद का पर्यावरण बताया गया है। सभ्यता की उत्पत्ति और पूर्ण सभ्यताओं के विनाश की अनेक कड़ियों का विस्तार से वर्णन यहां संभव नहीं है। प्राचीन भारतीय संस्कृति में ईश्वर प्रकृति और पर्यावरण पर किये गहन चिन्तन का विश्लेषण किया गया है। आधुनिक भौतिक सभ्यता में जी रहे मनुष्य द्वारा प्रकृति के साथ की जा रही छेड़खानी एवं पर्यावरण के वर्तमान स्वरूप का विश्लेषण क्रमशः अध्याय ४ और ५ में किया गया है।

खण्ड तीन में प्रकृति संरक्षण के अनेक पहलुओं की विवेचना की गई है। अध्याय ८ में यह बताया गया है कि संरक्षण कहीं वृक्षारोपण से भी अधिक महत्वपूर्ण है। शेर क्यों नरभक्षी हो रहे हैं? इसी खण्ड में विलुप्तिकरण के कगार पर खडे मासूम पैाधे और जीवों की दुखद स्मृतियों और कुछ भूले बिसरे पहलुओं को देखने का प्रयास किया गया है। संरक्षण के लिए ग्रामीण संरक्षण के नवीन विचार प्रतिपादित किये गये हैं।

अगले अध्याय में परमाणु आयुध उनके उपयोग और उसके बाद के विकृत विश्व की परिकल्पना की गई है। अन्त में सहस्तित्व के लिए प्रार्थना की गई है एवं पुस्तक को ज्ञानवर्द्धक बनाने के लिए पारिभाषिक शब्दावली से अन्त किया गया है।

अध्याय–०१
पर्यावरण उद्भव एवं विकास

किसी भी स्थान के पर्यावरण का प्रभाव उस जगह पाये जाने वाले प्राणियों एवं वनस्पतियों पर अवश्य पड़ता है। पर्यावरण का कोई भी पहलू उन्हें बिना प्रभावित किये नहीं रहता। धरती पर पर्यावरण के उद्भव एवं विकास की एक लम्बी कहानी है, यहां केवल संक्षेप में इस बात की चर्चा की जायेगी कि जब से धरती बनी आज तक किस–किस तरह के परिवर्तन हुए, और यह पर्यावरणीय परिवर्तन किन कारणो से हुए।

वैज्ञानिकों का अनुमान है कि धरती का उद्भव कोई ५०० करोड़ वर्ष पूर्व हुआ। आरम्भ में यह अत्याधिक गर्म थी। इस पर किसी प्रकार के जीवधारी नहीं रह सकते थे। सचमुच ही हमारी धरती तब प्राणी विहीन रही होगी। भू वैज्ञानिक इस काल को आर्कियोजोइक काल के नाम से जानते हैं। अनुमान है कि ५० करोड़ वर्ष बाद कोई ४५० करोड़ वर्ष पहले धरती धीरे–धीरे ठंडी होने लगी। तब गुनगुने समुद्री जल में अनेकानेक जटिल रसायनिक क्रयाओं के परिणामस्वरूप अत्यंत सूक्ष्म एककोशिकीय जीव विकसित हुए। वनस्पति वैज्ञानिको को इस बात के प्रमाण मिले है कि लगभग ३१० करोड़ वर्ष पहले तक बैक्टीरिया तथा नील हरित शैवाल विकसित हो चुके थे।

यहाँ यह बात ध्यान रखने की है कि इससे पहले पृथ्वी पर आक्सीजन का अभाव था। कुछ प्रकाशसंश्लेषी बैक्टीरियाँ और नील–हरित शैवालों ने सूर्य की रोशनी कार्बन–डाईआक्साइड तथा जल के माध्यम से प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया द्वारा अतिरिक्त ऊर्जा का संचय करना प्रारम्भ किया था। इस प्रकार प्रथम आक्सीजन युक्त पर्यावरण का निर्माण हुआ।

इस अत्यन्त प्राचीन जीवों के ऊर्जा संचय एवं पर्यावरण में आक्सीजन की वृद्धि से नये प्रकार के जीवों एवं वनस्पतियों के विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ। फिर भी ५० से ४३.५ करोड़ वर्ष पहले तक जिसे वैज्ञानिक और डोवीशियन युग कहते हैं, कोई भी स्थलीय जीवधारी एवं पौधे नहीं थे। जीवन मात्र समुद्री जल तक ही सीमित था।

आक्सीजन की वृद्धि के साथ अब तक जो जीवधारी पानी में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते थे, क्रमशः विकसित होकर स्थल की ओर बढने लगे। ४३.५ से ३९.५ करोड़ वर्ष पहले तक के सिल्यूरियन युग में स्थलीय पौधों का अच्छा विकास हुआ। सिल्यूरियन के अन्त एवं डिवोनियन युग के प्रारम्भ तक स्थलीय पौधे विकसित हो गये थे। इस युग के जीवाश्म आज दुनिया की अनेक संस्थाओं में संरक्षित है।

ऐसी मान्यता है कि डिवोनियन युग में ही हिटरोस्पोंरस पौधे एवं बीजधारी पौधे का अभ्युदय हुआ होगा। डिवोनियन युग में वर्णित बीजो के जीवाश्म प्रचीनतम बीज माने जाते हैं। डिवोनियन में जंगल काफी घने हो चुके थे। उनमें विभिन्न प्रकार के टेरिडोफाइट्स एवं नग्न बीजी पौधों के अलावा अनेक प्रकार के प्राणी भी विकसित हो चुके थे (चित्र–१)।

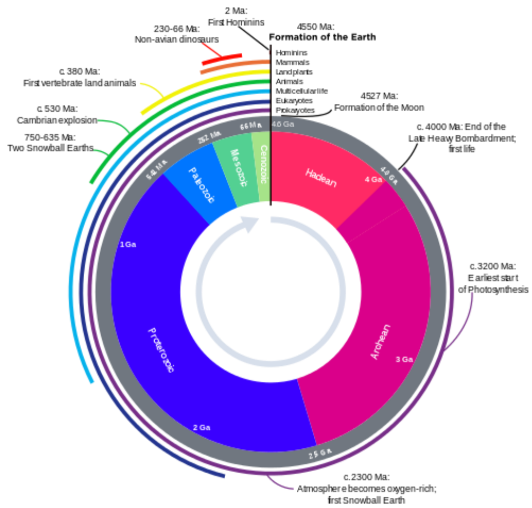

Fig. 1- Geological clock with events and periods

मध्य कार्बोनीफेरस काल (१३४५ से २८० करोड़ वर्ष पूर्व) तक सालों में पौधों एवं जीवों का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। इसी युग में अनेक कीट पतंगे डेरानप्लाई गिजइयाँ आदि का अभ्युदय हुआ। पौधों में हिटरोस्पोरी कई समूहों में प्रतिष्ठित हो चुकी थी, और अनेक बीजधारी पौधे अस्तित्व में आ गये थे। कार्बोनीफेरस युग रेप्टाइल्स के लिए बहुत अनुकूल था। ये रेप्टाइल्स कडी खोंल वाले अण्डे देते थे। जिन्हें नम रखने के लिए एम्फीबियन्स की भांति पानी की आवश्यकता नहीं होती थी। अनेक रेप्टाइल पौधों की पत्तियां खाकर अपना जीवन यापन करतें थे। अन्य मांसाहारी थे किन्तु इन्हें भोजन की कमी बिल्कुल नहीं थी। अनेक स्तनधारियों के साथ भीमकाय रेप्टाइल भी विकसित हुए जिन्हे जुरासिक पीरियड के समय विकसित होने वाले स्तनधारियों का पूर्वज माना जाता है (चित्र-२)।

Fig.2- The Carboniferous Period is famous for its vast swamp forests, such as the one depicted here. Such swamps produced the coal from which the term Carboniferous, or "carbon-bearing," is derived.

कार्बोनीफेरस और परमियन युगीन अवशेषों में हमें खनिज तेल एवं कोयला मिलता है जो हमारी ऊर्जा का महत्वपूर्ण स्त्रोत है। कार्बोनीफेरस स्तन धारियों के समान रेप्टाइल्स ट्राइएसिक पीरियड २३० से १६५ तक समाप्त हो चुके थे और एक दूसरी तरह के रेप्टाइल्स जो मछलियों, मगरमच्छों एवं कछुओं की तरह थे विकसित हुए।

जुरासिक युग (१६५ से १४१ करोड़ वर्ष पहले तक) जो डायनासोर के लिए प्रसिद्ध था। इनका आकार इतना बडा था कि विशालकाय हाथी बडे डायनासोर के टांग की ऊचाई तक ही पहुंच सकता था। डायनासोर को यदि हम विशालकाय छिपकली कहें तो इनकी संरचना समझने के लिए कल्पना करनें में सहूलियत होगी। क्रिटेशियस (१४५ करोड़ वर्ष पूर्व) युग के अंत तक सभी डायनासोर विलुप्त हो चुके थे, इनके विलुप्तीकरण के बारे में वैज्ञानकिो में भ्रांतियां हैं। कुछ वैज्ञानिको की मान्यता है कि डायनासोर साइकस की पत्तियां खाते थे। ये पत्तियां जहरीली होती है, जिसके कारण धीरे-धीरे जहर फैलने से डायनासोर का समूचा वशं ही विलुप्त हो गया। अन्य वैज्ञानिकों का मत है कि अंतरिक्ष से आने वाली जहरीली किरणों के कारण डायनासोर का लोप हुआ, ऐसा भी संभव है कि कुछ डायनासोर द्वारा दूसरे डायनासोर के अण्डे खा जाने के कारण धीरे-धीरे इनका लोप हुआ। इसी तरह की प्रक्रिया से आज घडियाल गुजर रहे हैं। चित्र-३

साइकस को डायनासोर के साथ जोडना युगों के साथ पर्यावरण एवं विलुप्तीकरण की दृष्टि से उपयोगी हैं। आज धरती पर साइकैडस विरले ही मिलते हैं, जबकि किसी युग में इनके घने जंगल थे। पर्यावरणीय प्रतिकूलता एवं अत्यंत धीमी वृद्धि तथा जीवन के संघर्ष में परिणित होने के कारण आज ये पौधें पूरी तरह से विलुप्तीकरण की कगार पर हैं।

क्रिटेशियस युग में धरती पर एक अलग तरह के पौधें का उदय हुआ, जिन्हें हम आवृतबीजी या एजिंयोस्पर्म कहतें हैं। इस समूह के पौधें विभिन्न प्रकार के वातावरण में उग सकते हैं और आज जलवायु एवं वातावरण में सबसे अधिक उपयुक्त इसी समूह के पौधे हैं। मनुष्य अपनी ६०ः आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं पौधों से करता है। आम, पीपल, सेव आदि सभी महत्वपूर्ण वृक्ष इसी समूह में आते हैं।

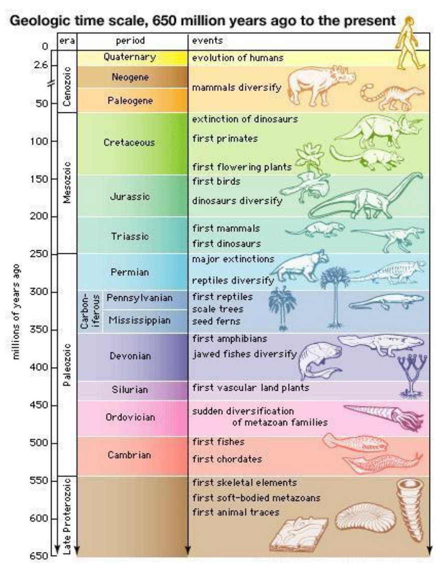

Fig. 3. Geological Time Scale

अध्याय–०२
हमारा बदलता संसार

पृथ्वी उत्पत्ति के समय गोल गेंद की तरह थी। अलग–अलग द्वीप समूह और सागर नहीं थे। कालान्तर में दों विशाल भू खण्ड उत्पन्न हुए जो एक दूसरे से एक समुद्र (टेपिस सी) द्वारा अलग थे। ये क्रमशः दक्षिण तथा उत्तरी भूखण्ड कहलाये, उत्तरी भूख्ण्ड में उत्तरी अमेरिका लारेशिया और अनेक देश थे। जबकि दक्षिणी महा भू खण्ड में इस समय के दक्षिणी तथा अमेंरिका आस्ट्रेलिया एण्टार्कटिका और भारतीय प्रायद्वीप आपस में जुडे थे। आज से करीब २८ करोड वर्ष पहले से धीरे–धीरे टूट कर अलग हो गये और करोडो वर्षो बाद आज इस स्थिति में है । महाद्वीप के इस विघटन और परिवहन को सिद्धांत के रूप में प्रतिपादित करने का श्रेय अल्फेट बेगसर को जाता है। अभी भी ये द्वीप समूह एक दूसरे से दूर जा रहे हैं। ये तो हुआ धरती के भू खण्डों की स्थिति के बदलाव के बारे में संसार का वातावरण भी समय के साथ बदलता रहा है।

प्रारम्भ में धरती पर आक्सीजन की कमी थी। समुद्र के गुनगुने जल में स्वपोषी नील–हरित शैवालों की उत्पत्ति एवं विकास से वातावरण में आक्सीजन की वृद्धि हुई फलस्वरूप दूसरे जीवों की उत्पत्ति का मार्ग प्रशस्त हुआ। अनेक पूर्व युगों के जीव का संक्षेप में वृतान्त पिछले अध्याय में दिया गया है। यहां यह बताना महत्वपूर्ण है कि लगभग २८ करोड वर्ष पहले एक बार दक्षिणी महा भूखण्ड हिमाच्छादित हो गया था। हिमाच्छादन के बाद वर्फ के पिघलने से खाली हुए झील पर नवीन वनस्पतियों और जीवों का उद्भव हुआ। यह वनस्पनियां उत्तरी महा भूखण्ड से विलकुल भिन्न थी और वैज्ञानिक इन्हें ग्लोसेप्टेरिस वनस्पति के नाम से जानते हे

ग्लोसेप्टेरिस वनस्पति के बाद अनेक जगहो में वातावरण शुष्क और कुछ ऊष्ण हुआ, फलस्वरूप अनेक नयी तरह की वनस्पतियों का प्रादुर्भाव हुआ।

अध्याय–०३
पर्यावरण और जीवों का विलुप्तीकरण

पर्यावरण की अनुकूलता एवं प्रतिकूलता उसमें रहने वाले प्राणियों एवं वनस्पतियों की क्रमशः समृद्धि एवं विलुप्तीकरण के लिए एक वृहद कारक हैं। आज से करोड़ों वर्ष पहले इस धरती पर भीमकाय सरीसृप एवं विशाल अपुष्पीय पादप पाए जातें रहें हैं। जिनके अवशेष आज भी जगह–जगह पर मिल जातें हैं। उस समय के विशाल जंगलो एवं जीवों के धरती के गर्भ में समाहित हो जाने के परिणाम स्वरूप आज हमें विपुल मात्रा में खनिज तेल एवं कोयला मिल रहा है। युगों के साथ सृष्टि की अनमोल निधि जीव एवं वनस्पतियों पर्यावरणीय प्रतिकूलता के कारण विलुप्त होती चली गई आज केवल अपने देश में ही १०,००० से अधिक वनस्पतयों की प्रजातियां विलुप्त होने की प्रक्रिया में हैं। इसके साथ ही प्रकृति की गोद में मुक्त रूप से विचरण करने वाले अनेक सुन्दर पक्षी एवं अनेक वन्य जीवों की संख्या दिनों–दिन कम होती चली जा रही।

किसी भी स्थान के पर्यावरण का उस जगह पाए जाने वाले प्राणियों एवं वनस्पतियों से गहरा सम्बन्ध है। पर्यावरण का काई भी पहलू उन्हे बिना प्रभावित किये नहीं रहता। युगों के साथ प्राणियों एवं वनस्पतियों के परिवर्तन के लिए भी पर्यावरण विशेष रूप से उत्तरदायी है। धरती कोई ४,६०० करोड़ वर्ष पहले से है। तब से आज तक इसके स्वरूप में बहुत अधिक परिवर्तन हो चुका है।

३.१ अति प्राचीन काल में धरती का पर्यावरण एवं उस काल के जीव

४,६०० करोड वर्ष पहले हमारी धरती इतनी अधिक गर्म थी कि इस पर किसी भी प्रकार के जीवधारी नहीं रह सकते थे। सचमुच ही हमारी धरती तब प्राणी विहीन रही होगी। कोई ४,५०० करोड वर्ष पहले यह ठंडी हुई तब गुनगुने जल से अनेक जटिल रासायनिक क्रियाओं के बाद एक कोशिकीय जीव विकसित हुए। अब तक वैज्ञानिकों को जो अद्यतन प्रमाण मिले हैं उनसे ज्ञात होता है कि कोई ३,१०० करोड वर्ष पहले तक बैक्टीरिया एवं नील हरति शैवाल विकसित हो चुके हैं।

कैम्ब्रियन पीरियड के प्रारम्भ में कोई ५७० करोड़ वर्ष पहले, धरती पर हिम युग की समाप्ति एवं समुद्री जल के ठन्डे होने के बाद अनेक जीवधारी उत्पन्न हुए ये सभी बिना रीढ़ वाले प्राणी थे।

५०० से ४३५ करोड वर्ष पहले तक का युग आर्डोविस्यिन कहलाता है। इस युग तक काई भी स्थलीय जीवधारी या पौधे नहीं थे। जीवन समुद्री जल तक ही सीमित था। इकाइनोडर्म एवं ब्रैकियोपोड प्रचुर मात्रा में थे।

३.२ वातावरण में आक्सीजन की वृद्धि एवं स्थलीय पौधें का अभ्युदय

समुद्री स्वपोषी शैवालों से पर्वतावरण में प्राण वायु आक्सीजन की वृद्धि हुई और अब तक जो जीवधारी पानी में ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर लेते थे उनमे से कुछ क्रमशः विकसित होकर झील की ओर बढने लगे। सिल्यूरियन पीरियड (४३५ से ३९५) करोड़ वर्ष पहले तक में स्थलीय पौधों का अच्छा विकास हुआ। सिल्यूरियन के अन्त एवं डिवोनियन पीरियड के प्रारम्भ तक

अनेक स्थलीय पौधे विकसित हो चुके थे। इनमे से राइनिया, कुकसोनिया वारावाग्नाथिया और जूस्टेरोफिलम आदि झीलों के किनारे उगने वाले पौधें है।

डिवोनियन पीरियड में ही हिटरोस्पोरस पौधे एवं बीजधारी पौधों का अभ्युदय हुआ होगा। फॉसिल इतिहास से ज्ञात होता है कि डिवोनियन काल से वर्णित बीज अब तक ज्ञात सबसे प्राचीन बीज है। डिवोनियन जंगल काफी घने हो चुके थे एवं उनमें अनेक प्रकार के टेरिडोफाइटस एवं नग्नबीजी पौधों के अलावा अनेकानेक प्राणी भी विकसित हो चुके थे।

मिडिल कार्वोनीफेरस काल (३४५ से २८० करोड़ वर्ष पूर्व) में पौधे एवं जीवों का साम्राज्य हो चुका था। इसी युग में अनेक कीट पतंगे, ड्रैरानप्लाई गिजाइयाँ आदि का अभयुद्य हुआ। हिटरोस्पोरी अब तक कई पादप समूहों में प्रतिष्ठित हो चुकी थी एवं अनेक बीजधारी पौधे अस्तित्व में आ गए थे। यह युग रेप्टाइल्स के लिए बहुत अनुकूल था। ये रेप्टाइल्स कडी खोल वाले अण्डे देते थे जिन्हें नम रखने के लिए एम्फीवियन्स की भांति पानी की आवश्यकता नहीं होती थी। अनेक रेप्टाइल पौधें की पत्तियाँ खाकर जीवनयापन करते थे अन्य मांसाहारी थे। किन्तु इन्हें भोजन की कमी बिलकुल नहीं थी। अनेक स्तनधारियों की तरह भीमकाय रेप्टाइल भी विकसित हुए जिन्हें जुरैसिक पीरियड के समय विकसित होने वाले स्तनधारियों का पूर्वज माना जाता है।

कार्वोनीफेरस और परमियन युगीन अवशेषों में हमें विपुल मात्रा में खनिज तेल एवं कोयला मिलता है। जो हमारे लिये ऊर्जा का अत्यंत महत्वपूर्ण श्रोत है।

३.३ डायनासोरों का युग

कार्वोनिफेरस युगीन स्तनधारियों के समान रेप्टाइल्स ट्राइएसिक पीरियड (२३० से १६५ करोड़ वर्ष पहले) तक समाप्त हो चले थे और अब दूसरी प्रकार के रेप्टाइल धरती पर अपना सम्राज्य बनाने लगे थे। समूचा मीसोजोइक महायुग ट्राइएसिक क्रिटेशियस युग तक रेष्टाइल्स का युग कहलाता है। इनमें से अनेक रेप्टाइल मछलियें की तरह के थे और अन्य मगरमच्छों एवं कछुओं की तरह जुरैसिक पीरियड (१६५ से १४१ करोड़ वर्ष पहले तक) डायनासोरों के लिए प्रसिद्ध है। डायनासौर धरती पर रहने वाले अब तक के विशालतम प्राणी थे। आधुतिनक हाथी बड़े डायनासौर की टाग की ऊंचाई तक ही पहुंच सकेगा। डायनासौरो को यदि हम अतिविशाल छिपकिली कह ले तो इनकी संरचना समझने के लिए कल्पना करने में सहूलियत होगी।

क्रिटेशियस पीरियड के अन्त तक सभी डायनासोर विलुप्त हो गए डायनासोरो के विलुप्तीकरण के बारे में वैज्ञानिको में भ्रात्तियाँ हैं। कुछ वैज्ञानिको की मान्यता है कि डायनासौर साइकस की पत्तियां खाते थे। ये पत्तियाँ जहरीली होती है, जिसके कारण धीर-धीरे जहर फैलने से डायनासौरों का समूचा वशं ही विलुप्त हो गया। अन्य वैज्ञानिकों का मत है कि अंतरिक्ष से आने वाली जहरीली किरणों के कारण डायनासौरों का लोप हुआ ऐसा भी संभव है कि कुछ डायनासौरों द्वारा दूसरों के अण्डे खा जाने के कारण धीरे-धीरे इनका लौप हुआ। इसी तरह की प्रक्रिया से आज घड़ियाल गुजर रहे है।

साईकस को डायनासौरों के साथ जोड़ना युगों के साथ पर्यावरण एवं विलुप्तीकरण की दृष्टि से उपयोगी हैं आज धरती पर साइकस विरले ही मिलते हैं, जबकि किसी युग में इनके घने जंगल

थे। पर्यावरणीय प्रतिकूलता एवं अत्यंत धीमी वृद्धि तथा जीवन के संर्घष में परिणित होने के कारण आज ये पौधें पूरी तरह से विलुप्तीकरण के कगार पर हैं।

३.४ पर्यावरण का वर्तमान स्वरूप

ऊपर वर्णित विभिन्न युगों में पर्यावरणीय परिवर्तन अत्यन्त धीमी गति से होता था एवं इन परिवर्तनों के लिए प्रकृति के अलावा किसी समाज या सभ्यता का हाथ होने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि मानव का तब तक प्रादुर्भाव ही नहीं हुआ था।

आज प्रकृति को विकृत करने का दोष हमारी अति भौतिक एवं अदूरदर्शी सभ्यता को है। प्रकृति का दोहन इतनी बुरी तरह बिना कुप्रभाव को ध्यान में रखे किया जा रहा है। इसकी तुलना हम इस प्रकार कर सकते हैं जैसे किसी अनाड़ी बच्चे ने मां का स्तनपान करते समय उसे इतना काट दिया कि वहां फोड़ा हो गया और मां ही बीमार हो गई। अनाडी बालक रूपी वर्तमान मानव का अपनी सीमाएं समझनी होगी अन्यथा निरंतर उपेक्षा एवं राक्षसी दोहन से सर्वनाश अवश्यम्भावी है।

लगातार जंगलों की कटाई से यहां हम एक तरफ अनेक जीवों एवं वनस्पतियों के विलुप्त हो जाने मे सहयोग कर रहे हैं, वहीं हम महाप्रलय की उस खाई के अपने को नजदीक कर रहे हैं जहां धसने के कारण हमारा विनाश निश्चित है कितनी तकलीफ देने वाली बात है कि जिस जंगल में हमारे बूढ़े लोग बाघ का शिकार करते थे वहां शियार भ्झी नहीं रह गए। वन्य पशुओं का यह विनाशकारी शिकार उनका है शमूल नष्ट कर डाले तो इसमें कोइ्र अतिशयोक्ति न होगी। रीवा–इलाहाबाद मार्ग पर कटरा से सोहागी तक आज से कोई ४० वर्ष पहले तक घनघोर जंगल था। कोई भी गांव का व्यक्ति रात में जंगली गांव में जाने से डरता था। शेर से लेकर परिस्थितिकी की भोजन श्रंखला के सभी जीव उस जंगल में थे, अब ये जंगल पूरी तरह नष्ट हो चुका है। घने वृक्ष देखने को नहीं मिलते हैं जंगल की जमीन खेती के काम आने लगी है पहाड़ों से शिखर धिसक रहे हैं। जमीन कट रही है।

वृक्षारोपरण से संरक्षण अधिक महत्वपूर्ण है।

लेखक को जंगल से बेहद लगाव हो रहा है अपने गांव के पास जो है मेरी यह मान्यता है कि यदि जंगल एवं इस जंगली भूमि में किसान अब खेती करने लगे हैं। लगे पौधों को बचाया जाए तो आने वाले १० वर्षों में पुनः घना जंगल तैयार हो जाएगा। जंगली वृक्षों में कई ऐसी जातियाँ हैं जो इस स्थान की जलवायु के लिए अधिक अनुकूल है। महुआ, पलास, बेर, सीसम आदि के वृक्षों को काटने के बाद उनकी जडों से कुछ नई कोपलें निकलती हैं। कभी कभी जोत की जमीनों से जड़ों को चोट लगने से कुछ नयी कोपलें निकलती हैं ऐसे पौधे बहुत हस्टपुष्ट और बहुत तेजी से बढ़ने वाले होते हैं। इन्हें सींचने की भी आवश्यकता नहीं होती क्योकि इनका संबंध पुरानी जड़ों से होता है। जो काफी गहरी होती है वृक्षारोपण के मुकाबले बहुत कम खर्चे पर ही प्रकृतिक संरक्षण का कार्य किया जा सकता है।

गांवों में सियार दुर्लभ हो गए हैं

सियार एक चंचल किन्तु निरही प्राणी है न तो इसको शासन से कानूनी संरक्षण प्राप्त है और न ही हिरणों की तरह जनता का। शायद यह वजह हो कि अब सियार के दर्शन नहीं हौते

बीसवीं सदी के छटवें दशक तक दिन डूबते ही सियारों की बोली सुनाई पडने लगती थी किन्तु १९६५ से १९७५ के बीच सियार की खाल बेचने वालों ने जिन्हें गांवों में लोग सिगट मार कहतें हैं समूचे इलाकों में सियारों का सफाया कर दिया और अब सियार दिखाई नहीं देते और न हीं उनकी आवाज सुनाई पडती है। १९७९ में भारत सरकार ने भारतीय वन संरक्षण कानून बनाया किन्तु उक्त कानून के तहत २१ जीवों गिलहरी एवं ६ वन्य जीवों के उत्पादों की छूट है इन ६ पशुओं में मोर पंख शेही और साधरण लोमड़ी और जंगली बिल्ली है। इन असुरक्षित जानवरों चारों तरफ से खतरा है।

३.५ प्राणियों एवं वनस्पतियों के विलुप्तिकरण के कारण

प्रकृति के कई वर्षो के प्रयास के पश्चात पृथ्वी पर जीवों का उद्‌भव और विकास हुआ। इन जीव-जन्तुओं एवं पादपों के प्राकृतिक आवास विभिन्न परिस्थितिक तंत्र रहे जिनमें ये निरन्तर गति से जन्म लेते हे और मरते रहे। वर्तमान में नियति के निरन्तर चलने वाले नियम में क्रियाशील मनुष्य ने बाधायें उत्पन्न कर दी, जिससे परिस्थितिक तंत्र में बाधा आ गयी और अनेक जीवों की जातियाँ धीरे-धीरे लुप्त होने लगी। वर्तमान में पादपों तथा प्राणी जातियों के विलोपन की दर में वृद्धि हो गयी है जिसके फलस्वरूप भू-पृष्ठ की जैव विविधता को खतरा उत्पन्न हो गया है।

समुदाय किसी क्षेत्र में निम्नकोटिकृत और कम हो सकते है, परन्तु जब तक मौलिक स्पीशीज जीवित रहती है, समुदायों में पुनः प्राप्ति होने की क्षमता रहती है। प्रत्येक जाति का एक अनोखा डी०एन०ए० संघटन होता है और वह पर्यावररण में विशिष्ट भूमिका अदा करता है। यदि एक जाति विलुप्त हो जाती है तो उसका स्थान अन्य जाति आंशिक रूप से ही ले पाती है पूर्णतः स्पीशीज विलुप्त तब समझी जाती है जब उस स्पीशीज का कोई भी सदस्य विश्व में कही भी जीवित नहीं होता।

विलोपन दरों पर मानव क्रिया का पहला विचारणीय प्रभाव देखा गया, जब आस्ट्रेलिया और उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका से उस समय से जब मनुष्य ने इस महाद्वीपों का सबसे पहले उपनिवेशित हुये वहीं बडे स्तनधारियों का विलोपन हुआ। हजारों वर्षो से, प्राकृतिक घास भूमि और वन का कुल क्षेत्रफल उत्तर अमेरिका केन्द्रीय अमेरिका, यूरोप और एशिया में स्थिरता से कम होकर चारगाहों और फार्म भूमियाँ मानवीय जरूरतों की आवश्यकतायें पूरी करने के लिये, में तबदील होते जा रहे है।

युगों के साथ अनेक प्राणी एवं वनस्पतियाँ विलुप्त हो गई एवं वर्तमान दूषित पर्यावरण में अनेक जीवधारी के विलुप्तीकरण का भय बना है। इनके विलुप्त होने से बचाने के लिए राष्ट्रीय एवं अंतराष्ट्रीय स्तर पर वैज्ञानिक एवं शासकों द्वारा प्रयत्न किये जा रहे हैं। मानवजन्य संहार को कम कर कुछ वनस्पतियों एवं प्राणियों को विलुप्त होने से बचाया जा सकता है किन्तु विलुप्तीकरण की प्रक्रिया को रोका जा सकता है क्योंकि यह प्रकृति के विकास की एक श्रंखलाबद्ध प्रक्रिया है।

वनस्पतियों एवं जीवों के विलुप्तीकरण के मुख्य दो कारण है :-

(१) प्राकृतिक कारणः-

विलुप्तीकरण के प्राकृतिक कारण इस प्रकार हैः

(१) आग लगना (२) बाढ़ आना (३) भूकम्प (४) भू-स्खलन (५) रोग इत्यादि। प्राकृतिक कारणों में कई प्राकृतिक आपदाओं के कारण वन या वन्य जीवन प्राणियों का खात्म होना है।

(२) मनुष्य प्रदत्त कारणः-

(१) आवास विनाशः- जैव विविधता का मानव द्वारा सीधा नुकसान उनके आवास नष्ट होने से हुआ है। मानव की जनसंख्या में गुणात्मक वृद्धि हो रही है। जैव समुदायों का अत्याधिक विनाश पिछले १५० वर्षो के अन्दर अत्याधिक हुआ है जिसके दौरान मनुष्य जनसंख्या १८५० में १ अरब से १६३० में २ अरब, १६६० में ५.३ अरब और २००० तक ६.५ अरब तक पहुँची गयी है। आवास विनाश से विशेष रूप से कशेरूक समूह के प्राणी अधिक प्रभावित होते है।

विश्व के कई देशों में विशेषकर द्वीपों पर जहॉ मनुष्य की जनसंख्या घनत्व अधिक है अत्याधिक मौलिक आवास क्षतिग्रस्त हुये है। ५० प्रतिशत से अधिक का वन्य जीवन आवास, ६१ पुरातन विश्व उष्णकटिबंधीय देशों में से ४६ में क्षतिग्रस्त हुआ है। (IUCN, UNEP 1986) उष्णकटिबन्धीय में में पूरा ६५ प्रतिशत वन्य जीवन आवास लुप्त हो गया है। बांग्लादेश (६४%), हांगकांग (६५%), श्रीलंका (८५%), वियतनाम (१८%) और भारत (८०%) में विशेषकर विनाश की ऊँची दरे है।

इसका विशेष कारण बडी मात्रा में व्यावसायिक क्रियायें, औद्योगीकरण और जनसंख्या वृद्धि के कारण भू-मण्डलीय अर्थव्यवस्था जैसेः- खनन, व्यावसायिक मत्स्य आखेट, जंगलों की निरन्तर कटाई, निर्माण उद्योग वनिकी, रोपण, कृषि, विनिर्माण और बाँध निर्माण जो लाभ के उददेश्य से शुरू हुये है।

(२) आवास खण्डनः- आवास खण्डन से तात्पर्य आवास जो पहले चौड़े क्षेत्र घेरते हो जो प्रायः सडकों, खेतों, कस्बों, नालों, पावर लाइन इत्यादि द्वारा अब छोटे-छोटे खण्डों में विभाजित हो गये है। जिससे पशुओं की घूमने तथा चरने की क्षमता कम हो जाती है। ध्वनि बढ जाने से पशु-पक्षी पलायन के लिये अन्य सुरक्षित स्थानों की तलाश में भटकने लगी है जिससे उनके प्रजनन में कमी आ जाती है।

(३) आवास निम्नीकरण एवं प्रदूषणः- आवास निम्नीकरण का मुख्य कारण प्रदूषण है जैसेः- समुद्री जीवों को प्राकृतिक आपदाओं से नही मारा जा सकता बल्कि नौका बिहार, जलयानों का स्थानान्तरण, औद्योगिक अपशिष्टों, रसायन, कीटनाशी, मोटर गाड़ियों का उत्सर्जन के द्वारा जलीय जीवों की संख्या में क्षति हो रही है। भवन निर्माण, सडक निर्माण से पर्यावरण पर बुरा प्रभाव पडता है।

अनेकों प्रकार के प्रदूषण जैसे- कीटनाशी प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण से पर्यावरण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है जिससे ग्लोबल जलवायु में परिवर्तन अम्ल वर्षा आदि से पादप एवं जन्तुओं पर विपरीत प्रभाव पड़ा रहा है।

(४) विदेशज स्पीशीज का प्रवेशः- विदेशज स्पीशीज वे होती है जो देश के बाहर से आयी हुयी प्रजातियाँ होती है। जैसेः- गाजर घास, यूकेलिप्टिस, आइपोमिया, सूबबूल इत्यादि।

विदेशी स्पीशीज नई जगहों पर स्थापित होकर देशज स्पीशीज को मारती या खा लेती है। विलोपन के बिन्दु तक या आवास को इस प्रकार बदल देते है कि कई देशज स्पीशीज उसमें जीवित रहने में अक्षम होती है। अतः देशज विदेशी स्पीशीज का प्रभाव द्वीपों पर अधिकतम है स्पीशीज पूरी तरह विलुप्त हो जाती है।

(५) अतिशोषणः– जनसंख्या के अत्याधिक बढने के कारण प्राकृतिक संशाधनों का दोहन प्राणियों एवं वनस्पतियों के स्थायित्व को खतरा पैदा कर देता है। अतिशोषण से विश्व में संकटापन्न कशेरूकियों की लगभग एक तिहाई तथा इसके साथ–साथ अन्य स्पीशीज भी खतरे में है।

(६) स्थानांतरी या झूम खेतीः– भारत के असम, अरूणाचल प्रदेश, मिजोरम, मणिपुर, मेघालय, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा के राज्य उत्तर पूर्व क्षेत्र में आते है। इन क्षेत्रों में विभिन्न मानव जाति समूह, भिन्न भाषाओं के साथ, कृषि के भिन्न तरीके अपनाते है। स्थानान्तरी खेती में प्राकृतिक पेड़–वनस्पति युक्त खेतों में आग लगा दी जाती है और इस प्रकार प्राप्त वनस्पति रहित खेतों पर खेती दो या तीन मौसम में की जाती है जब पैदावार कम होने लगती है तो दूसरे स्थान पर पूर्व क्रिया अपनाकर खेती की जाती है। इस प्रकार खेती को झूम खेती भी कहते है। इस प्रकार की खेती से मृदा अपरदन बढ़ता है तथा मृदा उर्वरता का हनन होता है और जैब विविधता नष्ट होती है।

३.६ कुछ विलुप्त वनस्पतियॉं

अब तक वनस्पतियों के अनेक समूह धरती के गर्भ में समाहित हो गए हैं। इनमें बहुतो के निशान धरती में मिल जाते हैं। पुरावनस्पति शास्त्र के अध्ययन से अनेक पौधों का पता चला है जो कालान्तर में पाए जाते थे किन्तु अब विलुप्त हो चुके हैं। इन पौधों के अवशेष धरती के अन्दर काष्ट, मोल्ड, इम्प्रेसन, और पैट्रोफैक्सन के रुप में पाए जाते हे इन सभी प्रकार के अवशेषों का वर्णन इस निबन्ध में सम्भव नहीं है। वनस्पतियां के अध्ययन की दृष्टि से कम्प्रेसन और पैट्रिफैक्सन अत्यंत महत्वपूर्ण फौसिल हैं, क्योंकि इस प्रकार के जीवाश्मों से उन पौधों के बारे में अनेक वैज्ञानिक तथ्य एकत्रित किए जा सकते हैं।

अपने देश में अनेक उच्च श्रेणी पौधों के जीवाश्म ज्ञात हैं। कुछ विशेष स्थलीय पादप समूहों का परिचय यहॉ दिया जा रहा है।

१. **लाइकोप्सिडा (लाइकोपोडियम):–** नामक पौधे से प्रायः सभी परिचित हैं। यह एक बडे पादप समूह का सदस्य है जिसे वैज्ञानिक लाइकोप्सिडा के नाम से जानते हैं। आज से करीब ३०० करोड वर्ष पहले इस समूह के अनेक पौधे धरती पर लहलहा रहे थे। किन्तु अब इस समूह के केवल लाइकोपोडियम, सेलजिनेला और आइसोइटिस हीं भारत में पाए जाते हैं। आइसोइटिस की कुछ जातियो के विलुप्त हो जाने का खतरा है। लाइकोप्सिडा के अनेक फॉसिल पौधों में से भारत में लेपिडोडेड्रान, लाइकोपोडियोप्सिस के अलावा अनेक प्रकार के मेगास्पोर्स पाए जाते हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं। कि कार्बोनीफेरस–पर्मियन युग में इस समूह के अनेक सदस्य पाए जाते थे जो आज नहीं हैं (चित्र-४,५,६)।

Fig.4- plant of *Lycopodium*

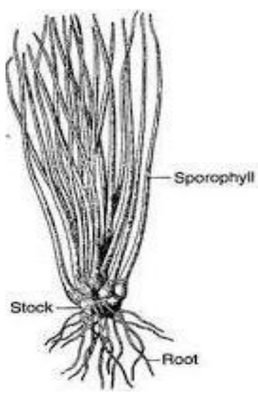

Fig. 5- *Isoetes* sporophytes

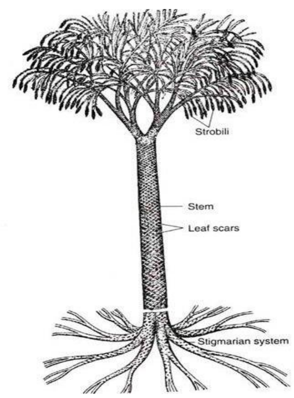

Fig. 6- Reconstruction of *Lepidodendron*

२. **स्फीनोप्सिडाः–** इस पादप समूह का अब केवल एक ही सदस्य इक्वीसिटिम जीवित अवस्था में पाया जाता है। भारत में इस समूह के अनेक विलुप्त सदस्यों के फासिल पाए जाते हैं, उदाहरण के लिए स्फीनोपिलम, कैलामाइटिस, रानीगजिया आदि (चित्र–७,८)।

Fig.7- Calamites rhizoid

Fig.8- Calamites foliage

३. फिलिकोसिंप्डाः– इस समूह के पौधों को सामान्यतया फर्न कहते हैं। भारत के निम्न गोण्डवाना फारमेसन में अनेक प्रकार के फर्न, रानीगंज कोलफील्ड से ज्ञात हैं।

४. जिम्नोस्पर्म्सः– प्रो. दिव्यदर्शन पन्त ने तेरहवे अंतराष्ट्रीय वनस्पति विज्ञान कांग्रेस सिडनी में प्रस्तुत किए गएं अपने शोध पत्र में निम्न गोण्डवाना जिम्नोस्पर्म का वर्णन किया है। इस समूह की अनेक पेट्रोफाइड काष्ठ ज्ञात है जिनमें वर्तमान जीनस आरड – कोरिया एवं ट्रैक्सस की तरह की आन्तरिक संरचना पाई जाती है। इसके अलावा पत्तियों एवं पत्ती युक्त अक्षों के अनेक इम्प्रेशन एवं कम्प्रेशन भी वर्णित हैं। पत्तियों में मुख्य रूप से ग्लोसोप्टेरिस, गैगामोप्टेरिस, पैलियावेटारिया, रूविजिया, रैण्डोटीनिया ओर वेल्मेनाप्टेरिस हैं। ग्लोसेप्टोरिस की पत्तियों के बहुतायत में पाए जाने के कारण इस क्षेत्र एवं निम्न गोण्डवाना की वनस्पतियों को ग्लोसोप्टेरिस प्लोरा के नाम से जानते हैं। हाल में ही बीरबल साहनी पुरावनस्पति संस्थान के वैज्ञानिक डॉ. के.आर. सुरगें और डॉ. शैलाचन्द्र ने भारत में पाई जाने वाले ग्लोसेप्टेरिस की विभिन्न जातियों पर एक विस्तृत ग्रंथ तैयार किया है।

ग्लोसोप्टेरिस के अलावा नोएगेराथिओप्सिस एवं कार्डइऐन्थस के कुछ फौसिल सदस्य भी ज्ञात हैं। इनके अलावा कोनीफर्स के फॅासिल भी बहुतायत में पाए जाते हैं। कोनीफर्स, पैरेनोक्लैडस और सियार सोलिया हैं। इनमें से बरियाडिया के बारे में वैज्ञानिकों ने अच्छी जानकारी इकट्ठी कर ली है (चित्र- ९)।

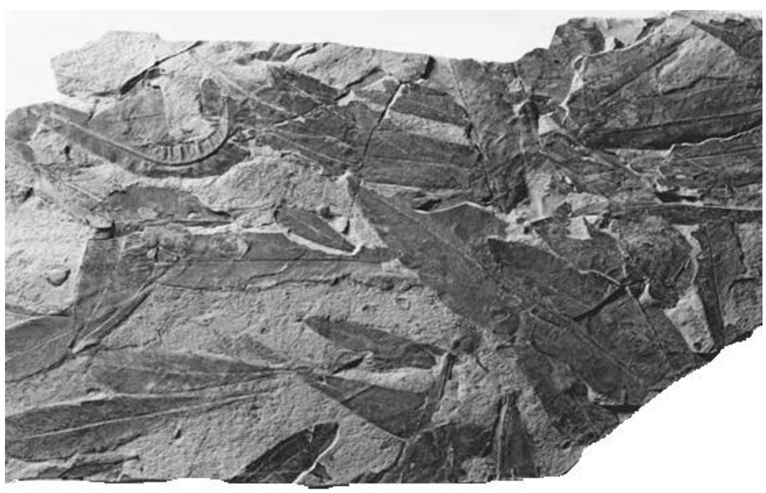

Fig. 9- Glossopteris leaves

अनेक ऐसे भी पादप जीवाश्म ज्ञात हैं जिनको वर्तमान स्थिति में किसी विशेष समूह के अर्न्तगत वर्गीकृत करना उचित नहीं हैं ऐसे जीवाश्मों के बारे में अधिक जानकारी इकट्ठी करने की आवश्यकता है।

प्राचीन जीवाश्मों का अध्ययन करने से हमें उस सीन एवं काल की परिस्थितिकी के विभिन्न पहलुओं के बारे में आवश्यक जानकारी भी मिलती है। जिसका उपयोग हम पर्यावरण के अध्ययन एवं वर्तमान में प्रकृति संरक्षण के लिए कर सकते हैं।

अध्याय–०१

धरती पर मानव का अभ्युदय, सभ्यताओं का विकास

पिछले अध्याय में यह बताया गया कि पृथ्वी की उत्पत्ति से आज तक वनस्पतियों एवं जीवों में काफी परिवर्तन होते रहे हैं। यह परिवर्तन प्रकृति के सार्वभौम नियम के अनुरूप धीमी गति से होते थे। इन परिवर्तनों के लिए प्राकृतिक विपदाओं, वातावरण एवं जलवायु में परिवर्तन के अलावा किसी समाज एवं सभ्यता का हाथ नहीं था, धरती पर उस समय तक मनुष्य का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था। पहले–पहल जब मनुष्य धरती पर अवतरित हुआ, जब इसकी भी कोई सभ्यता नहीं थी, न ही कोई समाज था। ये सभ्यता और समाज विकास के चरण हैं। मनुष्य पहले जंगलों में रहता था और मांस तथा जंगली फल–फूल खाया करता था।

धीरे–धीरे मनुष्य सामाजिक प्राणी बना आग जलाना सीखा और काफी समय बाद खेती करना सीखा। विकास की प्राथमिक अवस्था में वह पूरी तरह जंगलों पर आश्रित था, जोकि मोहन जोदड़ों एवं हड़प्पा की सभ्यता तक पहुँचते–पहुँचते उसने घर और नगर बसाने शुरू कर दिये थे। इसके पहले की सभ्यता को हम पाषाण–युग कहते हैं। जिसमें आदमी गुफाओं में रहता था, और शिकार करने के लिए पत्थर के बने साधारण औजारों का उपयोग करता था। उस युग के मनुष्य को हम पौलियों–ज्ञिमिक मनुष्य कहते हैं। पाषाण युग के अन्त में जलवायु में बहुत तेजी से परिवर्तन हुआ और यूरोप आदि में बड़े–बड़े जंगलो का अभ्युदय हुआ अब इस नये युग को जिसे हम नियोलिथिक कहते हैं के मनुष्य ज्यादा बुद्धिमान थे। इन्होने खेती करना सीख लिया था, और भोजन के लिए अन्न उगाने लगे थे।

मनुष्य की सभ्यता में यह क्रांतिकारी परिवर्तन था। उसने अब तक कुछ जानवरों को पालना सीख लिया था। यद्यपि यह एक तरह से प्रकृति पर मनुष्य के विजय की शुरूआत थी फिर भी प्रकृति से साथ सामन्जस्य बना कर चलते थे। वैदिक ऋषियों की धारणाओं का संक्षेप में विवरण आगे अध्याय में दिया गया है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि प्रकृति के संतुलन का चक्र तब नहीं टूटा था बल्कि राम के युग तक प्रकृति से बहुत ही अच्छा सामन्जस्य था। रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं।

नहीं दरिद्र कोउ दुखी न हीना। नहि कोउ अबुधर लक्षन हीना।।

जब तक मनुष्य अपनी दूरदर्शिता से काम लेता रहा उसकी भोगवादी प्रवत्ति नहीं थी। तब तक उसने प्रकृति का शोषण नहीं किया। आज हम जितनी तेजी से भौतिक संशाधनों की होड़ में लगे हैं, उतना ही पर्यावरण को बिगाड़ रहे हैं। हम एक पक्ष सोचते हैं लेकिन दूसरे को पूरी तरह अनदेखा कर देते हैं और कई बार वैज्ञानिकों द्वारा दी गयी चेतावनी को भी भूल जाते है। पर्यावरण के बारे में ईमानदारी से देखने पर ऐसा लगेगा कि इसके विकृत करने का श्रोत हमारी सुख सुविधा भोगी प्रकृति ही है। बिन्दु बार लिखने पर ये श्रोत दर्जनों की संख्या में पहुंच जाते हैं। यद्यपि श्रोत का यह वर्गीकरण केवल समझने की दृष्टि कोण से किया गया है।

जंगलों की बेताहासा कटाई से मनुष्य अभी चाहे दस बीस वर्षों तक जितनी आमदनी कमा ले लेकिन इनके परिणाम बहुत दूरगामी होगे। प्रकृति को नष्ट करने का मूल कारण भी यही है।

पेड़ों के कटने से आक्सीजन के प्रतिशत में गिरावट होगी कार्बन डाईआक्साइड का स्तर बढ़ेगा। क्या बिना आक्सीजन के किसी भी जीवधारी क जिन्दा रहने की कल्पना की जा सकती हैं? या क्या सभ्यता की ऊँची चोंटी पर पहुँचा मनुष्य प्रत्येक व्यक्ति की पीठ पर आक्सीजन को सिलेन्डर बाधेगा। अकेले पौधे ही हैं जो सौर ऊर्जा को प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा प्रणियों के उपयोग के लिए ऊर्जा के विविध रूप देते हैं। १६८४ में एक हंगामा मचाने वाली पुस्तक प्रकाशित हुई। 'ग्रीन हाउस एक्ट सी लेविल राइस' लेखक माइक्ल सीवार्थ और जेम्स टाइटस ने कहा है कि कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा बढ़ने से गर्मी बढ़ सकती है। गर्मी के कारण ध्रुवों की वर्फ पिघलने से सागर तल बढ़ रहा है, समुद्र में पानी के तल के बढ़ने से कम ऊंची जगहें, पानी में डूब सकती है। जिसमें अनेक देश समुद्र में समाहित हो जायेगें।

१. विश्व विख्यात पत्रिका नेचर में प्रकाशित लेख के अनुसार इस दशक के ये पाँच वर्ष अब तक के सबसे गरम वर्ष रहे हैं। जून २०२० में देश के कई महानगरों का तापक्रम ४८^{0}C से भी ऊपर पहुंच गया था और लू से मरने वालों की संख्या सैकडों में थी। इन सबके होते भी यदि हम नहीं चेते तो अधिक भयंकर समय आ सकता है।
२. हमारे प्राचीन ऋषि विभिन्न रूप से प्रकृति के विभिन्न पहलुओं से पूरी तरह से भिज्ञ थे। उनकी पूजा का बहाना रहा हो अथवा लोगों को समझाने का तरीका लेकिन पर्यावरण में किसी भी एक को प्रभावित किये बिना प्रकृति से अपनी आवश्यकतानुसार प्राप्त करने का प्रचीन दर्शन आज भी उपयोगी सिद्ध हो सकता है। वृक्ष, पर्वत ही नहीं झरने, वायु, अग्नि, आकाश सब की पूजा कर सबके बारे में जानकारी एवं सार्थक उपयोग का मार्ग दर्शन हमें भारतीय संस्कृति से मिल सकता है।
३. प्रगति के नाम पर बढ़ता हुआ औद्योगीकरण।
४. शासकीय प्रयासां में जनता के भागिदारी का अभाव।
५. मनुष्य की बिगड़ती मानसिकता तथा जनसंख्या विस्फोट।
६. रेडियो, टी.वी., बेतार के प्रसारण से ईश्वर तरंगों का क्षुब्ध होना।

दूषित पर्यावरण की समस्या से विश्व आक्रान्त है इससे जल, थल तथा वायु की सभी प्राकृतिक अवस्थायें बदलती जा रही हैं मनुष्य समेत जीवों एवं वनस्पतियों के लिए जीवित रहने का उपयुक्त वातावरण अत्यन्त जटिल होता चला जा रहा है हम अपने विनाश के कगार की ओर बढ़ रहे हैं।

अध्याय–०२

ईश्वर, प्रकृति और पर्यावरण–प्राचीन चिंतन का आधुनिक विश्लेषण

भारत भूमि युगों से प्रकृति प्रेमियों की तपस्थली रही है। वैदिक ऋषियों की पुण्य भूमि भारत मानव सभ्यता के प्रारम्भ से आज तक, जब यह सभ्यता अपने चर्मात्कर्ष पर है, अपनी विविधता में एकता के दर्शन कराने, प्राणि मात्र के कल्याण के चिन्तन के चिराग जलाने, आगाध प्राकृतिक सम्पदा के साथ अपनी मूल प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को लिए, भावी पीढ़ी को शान्ति की राह दिखाने के लिए समूचे विश्व का ध्यान आकृष्ट करती है। भारत की सभ्यता दुनिया की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। यहाँ तक कि वैदिक युग के काल निर्धारण के बारे में विद्वानों की एक राय नहीं है। आधुनिक वैज्ञानिक मतानुसार हमारे देश में कृषि कार्य कोई १०,००० वर्ष पहले प्रारम्भ हो चुका था, वैज्ञानिक प्रमाण हैं। जीवन के अन्य पहलुओं की भांति प्राचीन काल से ही वैदिक ऋषि पर्यावरण संतुलन एवं विसंगतियों से पूरी तरह भिज्ञ थे। इसकी समुचित जानकारी हमें विभिन्न संस्कृत ग्रन्थों से मिलती है। वेदों को अपौरूषेय माना जाता था। वेद और उपनिषदों के ऋषि युग दृष्टा थे। तभी तो उन्होंने प्रकृति जीवन दायिनी है। सम्भवतः धर्म–अधर्म पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक आदि के साथ धरती, पर्वत, नदियों, वृक्षों एवं पशु–पक्षियों को जोड़कर मानवीय संवेदनशील भावनाओं का उद्रक करने के पीछे हमारे ऋषि पूर्वजों की दृष्टि पर्यावरण की सुरक्षा एवं संतुलन की ही रही है। प्रकृति से हम ले मगर उतना ही जितना हमारे लिए आवश्यक है। और उससे प्राकृतिक संतुलन न बिगड़ने पाये। यदि हम त्याग पूर्वक भोगे तो प्रकृति से हमें सब कुछ मिल सकता है। ऐसी भावना प्राचीन ऋषियों की थी।

प्रकृति पर्यावरण या संरक्षण का मूल मंत्र–

ईशावास्यमिदं, सर्व यत्किच्चित जगात्यां जगत।
तेन त्वक्तेन भुच्चीथा मा गृधः कस्य स्विद धनम्।।

तात्पर्य यह है कि इस अखिल ब्रम्हाण्ड में जो कुछ जड़ चेतन है उसका त्याग पूर्वक भोग करना चाहिए क्योंकि यह सम्पदा किसी की नहीं है। आज के इस वैज्ञानिक युग में हम अच्छी तरह समझते हैं कि हमारा समूचा जीवन ही पौधें पर निर्भर है।

सौर ऊर्जा के हमारे उपयोग हेतु अन्य रूपों में बदलने के प्राकृतिक श्रोत अकेले पौधे हैं। अतः उनको नष्ट कर इनका आसक्ति पूर्वक भोग निश्चित ही विनास का कारण बन सकता है।

प्रकृति माँ है बेटी नहीं

नदियाँ की पूजा वृक्षों की पूजा, गोर्वधन पूजा आदि महज कोरे अधंविश्वास नहीं हैं। वरन् इनके पीछे छुपी सूक्ष्म भावना मनुष्य को पर्यावरण संतुलन का बोध कराती है। यह सिखाना कि उच्च शैल शिखरों, हरी भरी झाड़ियों, कल–कल करती नदियों से भरपूर यह शस्य श्यामला धरती हमारी माँ है पर्यावरण का स्वरूप का आशय करो। मनुष्य को अपनी अभिवृद्ध के लिए तो प्रकृति से ही सब कुछ चाहिए जैसे कि बेटे को माँ से प्रकृति उसे देती है रहने के लिये आश्रय, जीने के लिये खाना और तन ढ़कने के साधन। तो प्राकृतिक विनाश कर, क्या वह अपने सर्वस्व नाश का निमंत्रण नहीं कर रहा है। प्रकृति मनुष्य को उसके भोगों के लिए सब कुछ देने को तैयार है, पर

चेरी या दासी बनकर नहीं, मां बनकर प्रकृति को चेरी बनाने की मानव की यह भूल उसे कहीं का नहीं रहने देगी। प्रकृति चाहती है शान्ति और सामन्जस्य और देखना चाहती है अपने लाड़ले बेटे।

मनुष्य भी एक जाति है

मनुष्य धीर, वीर, गम्भीर, लोभी, लालची और कपटी नहीं। मनुष्य पर्यावरण तंत्र में भाग ले रहीं लाखों करोड़ों जातियो में से एक जाति है। हाँ! सर्वोच्च विकसित जाति। लेकिन इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि वह लाखों जातियों – प्रजातियाँ की कीमत पर अपनी वृद्धि करें और सुख भोग करें जैसा कि आज हो रहा है। प्रो. टी. एन. खुरू ने १६८६ में भारतीय विज्ञान कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था कई महानगरो में तो मनुष्य ही सबसे प्रभावी प्रजाति है। ऐसा लगता है जैसे मनुष्य ही अकेली जाति है, और यह उसी की दुनिया ओर उसी का पर्यावरण है शेष कुछ नहीं।

सर्व शक्तिमान प्रकृति

हमारे ऋषि प्रकृति को सर्वशक्तिमान मानते हैं जो अन्तःकरण, कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियों को अपना–अपना कार्य करने की योग्यता प्रदान करती है। कठोपनिषद में शिष्य गुरूदेव से पूछता हैः

ऊँ केनेणितं पतति प्रेषित मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
क्नेष्तिा वाचमिमां वदति चक्षुः श्रेत्रं क उदेवोयुनक्ति।।

अन्तःकरण, प्राण, मन, वाणी आदि कर्मेन्द्रियों ओर चक्षु आदि ज्ञानेद्रियाँ को अपना अपना कार्य करने की योग्यता प्रदान करने वाला एवं इन्हें अपने–अपने कार्य मं प्रवृत करने वाला कौन हैं यह प्रकृति ही तो है जिसे समझ लेने पर मनुष्य बन्धन युक्त हो जाता है। अर्थात लोभ मोह रहित होकर उसका अंधाधुंध दोहन बंद कर देता है प्रकृति सब कुछ है।

श्रेत्रस्य श्रोतं मनसां मनो यव्दाचो ह वाचूँ स उ-प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषच्श्रक्षु रतिमुचय धीरा प्रेत्यास्माल्लों कादमृदा भवन्ति।।

अर्थात जो मन का मन अर्थात कारण है, प्राण का प्राण है, वाक्–इंद्रिय का वाक् है, श्रोत्रेन्द्रिया का श्रोत है और चक्षु–इन्द्रिय का चक्षु है वह ही सबका प्रेरक परमात्मा है।

ईश्वर का प्रकृति में दर्शन गीता में ईश्वर का प्रकृति के विभिन्न रूपों में दर्शन होता है। कृष्ण अर्जुन से कहते हैंः–

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्व च मयि पश्यति।
तस्यहं न प्रजश्यामि सच में न प्र्णश्यति।।

जो पुरूष भूतो में मुझ वासुदेव के दर्शन करता है एवं सम्पूर्ण भूतों को मुझ में देखता है उसके लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है।

पुनः आभास मिलता है कि प्रकृति ही ईश्वर हैः–

भूमि रापोउनत्लों वायुः खं मनो वुद्धिरेव च।
अहंकार इतियं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

अर्थात पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार यह आठ प्रकार से विभक्त हुई मेरी जड़प्रकृति है।

जव भूता महावाहो ययेदं धयति जगत्।

जीव रूप चेतन प्रकृति से सम्पूर्ण जगत को धारण करता हूँ। ब्रम्ह वृक्ष की कल्पना श्वेताश्वेतरोयनिषद में वृक्षों को साक्षात ब्रम्ह कहा गया हैः

वृक्ष इव स्तर्ब्धें दिवितिष्ठत्येकः
स्तेनेद पूर्ण पुरूषेण सर्वप।।

नरसिंहं पुराण में ब्रम्ह परं चैव ब्रम्ह वृक्ष कहा गया है।

एतद् ब्रम्ह परं चैव ब्रम्ह वृक्षस्य तस्य तद्।

अथर्ववेद में पीपल के वृक्ष को देव सदन कहा गया है सबसे ज्यादा आक्सीजन (प्राणवायु) पीपल ही छोड़ता है।

अश्वत्थः देव सदनः

स्कंधपुराण में सभी वृक्षों को विष्णु का वास बताया हैः

एको हरिः सकल वृक्ष गतों विभति

चूंकि वृक्ष हमारी समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अतः जातक कथाओं में उन्हें ''सर्व कामदाः वृक्षा'' कहा गया है। जैन और बौद्ध साहित्य वृक्ष यात्राओं और वृक्ष महोत्सवों से भरे हैं। महाभारत व रामायण में भी कल्प वृक्षों के विवरण मिलते हैं। वृक्षों पर देवताओं के वास करने का विश्वास सिंधु घाटी की प्राचीनतम सभ्यता से लेकर आज तक देश के कोने-कोने में पाया जाता है। गौतम बुद्ध में इस वृक्ष को बोधिवृक्ष के नाम से जानते हैं वृक्षारोंपण के महत्व से भारतीय मनीसी बहुत पहले से परिचित थे, उन्होंने वृष्णुधर्म सूत्र में कहा हैः

वृक्षा रोपपितुर्वृक्षाः पर लोके पुत्रा भवन्ति।

अर्थात इस जन्म में लगाए गए वृक्ष अगले जन्म में सन्तान के रूप में मिलते हैं।

वृक्षारोपण की महता के बारे में बराह पुराण में कहा गया हैः-

अश्वत्थ मेंकं पिचुमिन्द मेंकं
न्यग्रोध मेंकं दश पुष्प जातीः।
द्वे द्वे तथा दाडिम मातुलुगे
पंचामुरोपी नरकं न याति।।

जो व्यक्ति पीपल, नीम या बरगद के एक-एक पौधें अनार या नारंगी के दो-दो, आम के पांच और लताओं के दश पौधे लगाता है वह कभी नरक मे नहीं जाता।

तुलसी के औषधीय महत्व से कौन परिचित नहीं होगाः

तुलसी यस्य भवने प्रत्यहं परिपूज्यते।
तद्ग्रहं नो य प्श्यन्ति कदाचित यम किंकराः।।

अध्याय–०३
प्रकृति से छेड़खानी

आज से ४–५ लाख साल पहले जब आज के मानव के पूर्वज ने पहली बार कमर सीधी करके अपने पावों पर खड़े होना सीखा होगा तथा अपनी अजीविका के लिए हाथ पाँव फैलाने शुरू किये होगे तभी से प्रकृति के साथ छेड़खानी का श्री गणेश हो गया। मानव का विकास क्रम प्रारम्भ हुआ मसलन उसने अपनी शारीरिक दुर्बलताओं को पूरा करने के लिए पत्थरो के, लकड़ी के औजार बनाने शुरू कर जंगली जानवरों पर अतिक्रमण करने शुरू कर दिये। वनस्पतियों एवं पेड़–पौधों को अपने अनुकूलन हेतु निर्ममता से काटने शुरू कर दिये। यह छेड़छाड़ प्राकृतिक दोहन कहा जावेगा। लेकिन मानव में विद्यमान उसकी अमूल्य निधि दिमाक ने उसे आधुनिकीकरण की ओर अग्रसर करता रहा और वह प्रकृति के सद् पर्यावरणीय दोहन की अपेक्षा उसका शोषण करना शुरू कर दिया। प्रकृति के साथ छेड़छाड़ के कई बिन्दु हैं जिनमें से प्रमुख निम्न हैं–

३.१ जीव, जीवमण्डल, जीवन एवं उसका ताना बाना

करोड़ों वर्ष जीवों की उत्पत्ति के फलस्वरूप वे अपने गुण, धर्म, प्रभावशीलता, अनुकूलता तथा अन्य लक्षणों के अनुसार अपने–अपने विकास में जुट गये। नयी–नयी संरचना, अनुकूलता के जवों का प्रादुर्भाव प्रारम्भ हुआ। संभवतः सूक्ष्मदर्शीय जीवों का उदय हुआ क्रमानुसार बड़े से बडे जीव की उत्पत्ति हुयी। इस प्रकार से अनगिनत जीवों का जीव मंडल निर्मित हो गया। जीवमंडल में स्थित प्रत्येक जीव ने अपनी वृद्धि व विकास के लिए दूसरे जीवों व वनस्पतियों को अपना पोषक चुना। यह क्रम पारिस्थतिक रूप सें सामन्वय पूर्ण रहा। पृथ्वी के सबसे प्रबल जीव मानव के अभ्युदय के समय जो ताना बान चला उसने प्रकृति के नियमों में अपनी सोच भरनी प्रारम्भ कर दी। उसने कुदरत की देन स्वीकार न कर उसे अपने अनुरूप मोड़ने पर मजबूर करना शुरू कर दिया नतीजन प्रकृति से साथ जीवों का एक जंजाल तैयार हो गया।

३.२ मानव एवं मानव विकास

मानव ने अपने पैरों पर खड़े होते ही उसने जीवों का शिकार कर माँस खाना प्रारम्भ कर दिया, उसने हड्डियों के आभूषण, खाल के कपड़े इत्यादि प्रक्रियाये प्रारम्भ कर दी। समझ विकसित होने पर उसने प्रकृति से तालमेल करना शुरू यिा जिसके तहत पशुओं को पालना, खेती करना आदि कुदरत से तालमेंल बैठाकर कर्म करना शुरू किया। लेकिन बाद के वर्षों में उसने प्रकृति से अपनी मनमानी करनी शुरू किया, जब तक मिट्टी उपजाऊ रही, नदियों में पानी रहा तब तक खेती की, नहीं फिर आगे चल दिय। जंगल के जंगल काट डाले एवं जला डाले। हरे भरे मैदान रेगिस्तान बन गये यह क्रम बन्द नहीं हुआ आज भी सतत् रूप से जारी है। असम और मेघलय की पहाड़ियों में प्रचलित खेती 'झूला' से आकलित किया जा सकता है।

मानव के अनियन्त्रिक विकास में अनेक अकालो को जन्म दिया है। अपर लैण्ड का आकाल बंगाल का आकाल इत्यदि किसी एक फसल को बार–बार उगाने के कारण मृदा की गुणवक्ता की कमी से फसलों के चौपट होने का ही परिणाम है अन्धाधुन्ध वनों की कटाई ने धरती को नंगा कर

दिया और ऊपर से उसे वर्षो से बची खुची उपजाऊ मिट्टी भी बह गयी। मानव की यह शोषणयुक्त आदिम परम्पर प्रकृति को विखण्डित कर रही है।

३.३ औद्योगिक क्रांन्ति

विकसित युग ने औद्यौगिक क्रान्ति का रूप लेना शुरू किया। जब जगल-जगह फैक्टरियाँ खुलनी प्रारम्भ हुई तो लोगों ने अपने माथे पर विकसित होने का लेबल लगा लिय। लेकिन इन फैक्टरियों के चिमनी से निकलने वाले धुएं ने उसी इन्सान की नींद हराम कर दी है।

इंग्लैण्ड से उठी यंत्रीकरण की दौड़ में यूरोप, अमेरिका रूस, सहित सारी दुनियाँ शामिल होती चली गयी। उत्पादन बढ़ने के लिए कोयला, पेट्रोल, बिजली और परमाणु ऊर्जा सभी साधनो का भरपूर इस्तेमाल किया जाने लगा है। विकास के इस चक्र पर पीछे नजर डालने पर सिर्फ प्रकृति घुट-घुट कर मरती दिखाई देती है। ध्वनि विस्तारक यन्त्र, मोटरों, जेट विमानों से निकला वेतहासा शोर चिमनियों, मोटरकारों से निकलने वाली विषैली गैसे, कारखानों व उद्योगों से निकल रहे अपशिष्टों इत्यादि ने क्षितिज वायु एवं जल सभी को दूषित करके रख दिया है प्रकृति से साथ इस औद्योगिक क्रन्ति का प्रहार अब उसके निर्माताओं की अबरू लेने को आतुर है। १९५२ में लन्दन में दस दिन के अन्दर ४,००० आदमियों एवं जापान के किजिमाता कस्वे में सैकड़ों आदमी, कुतते, बिल्ली व पशु पक्षियां ˙ की एकाएक मौत प्रकृति से साथ औद्योगिकरण के नाम पर की गयी छेड़खानी के बेहतर प्रमाण हैं।

३.४ जनसंख्या विस्फोट

एक ओर हवा दूषित हो रहीं है, पानी खराब हो रहा है और दूसरी ओर आवादी सुरसा की तरह बढ़ती जा रहीं है। कुदरत का अपना तरीका था, वह हर जीव को उतना ही पनपने देती थी, जितनों का वह पेट भर सकती थी। जब सन् १९५० में सर जूलियन हक्सले ने यह भविष्यवाणी की थी कि सन् २००० तक आदमी की आबादी तीन अरब हो जायगी तब किसी को भरोसा नहीं हुआ लेकिन देखते ही देखते सन् १९६३ में ही हम तीन अरब की रेखा पर गये। भारत जैसा देश अकेले अरबो की संख्या का मालिक है। इस आबादी का पेट भरना प्रकृति की क्षमता से परे है लिहाजा यह तड़प रही है। इसका आशय यह है कि अगर हम और वृक्षारोपण करेंगे तो निश्चित ही पर्यावरण सुरक्षित होगा और इससे सुरक्षित हमारी आने वाली पीढ़ी।

अध्याय–०४
पर्यावरण और प्रकृति

पर्यावरण सभी परिस्थितियों और प्रभावों का समूहिक योग है। जो जीवों के विकास एवं जीवन को प्रभावित करती हैं लेकिन पर्यावरण सम्पूर्ण प्रकृति नहीं है इसमें केवल उन्हीं बातों का जिक्र हो सकता हे जिसके प्रभावों की जानकारी हमें है।

प्रकृति पूर्ण है इसके अन्तर्गत वे सभी बातें है जो पर्यावरण में हैं। इसके अतिरिक्त अनेक कारक जिनके बारे में अभी हमारी जानकारी नहीं है। ठोस वैज्ञानिक सबूत नहीं है लेकिन जिनके बारे में हमारी मान्यताएं हैं कि यह भी प्रभाव उतने होगें जिसे अनेक ग्रह नक्षत्रों पर्यावरण शब्द पूर्णतः वैज्ञानिक है जबकि प्रकृति शब्द ज्यादा दर्शनिक है। वैसे कई जगहों पर यह दोनों पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त किए जा सकते हैं। जहाँ दोनों शब्द एक साथ है वह पर्यावरण मुलतः वैज्ञानिक पर प्रकृति मूलतः दार्शनिक चिन्तन का शब्द है।

अध्याय–०५
पर्यावरण का वर्तमान स्वरूप

पर्यावरण के वर्तमान स्वरूप का सम्यक विवेचन गांधी शान्ति प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित देश का पर्यावरण नाम पुस्तक में किया गया है। यदि देश के विभिन्न भागों के पर्यावरणीय पहलू का विस्तृत अध्ययन किया जाय तो अनेक भागों वाला ग्रन्थ तैयार होगा जो इस छोटी सी पुस्तक में संभव नहीं है। भूमि मिट्टी, पानी, हवा सभी कुछ दूषित हो रहा हे। और स्थिति भयावह हो रही है। पेड़ कट रहे हैं जगल नष्ट हो रहे है। फलस्वरूप आक्सीजन की प्रतिशत मात्रा में ह्रास हो रहा है। कार्बनडाईआक्साइड बढ़ रही है धरती का तापक्रम बढ़ रहा है। वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। मौसम अपनी दिशा बदल रहा हैं। अब समय पर बरसात नहीं होती, कभी अतिवृटि और भी अनावृष्टि, ग्लेसियर पिघल रहे हैं। फलस्वरूप सागर का जल स्तर बढ़ रहा है यदि हम अभी भी नहीं चेते तो आने वाला समय भयावह हो सकता है। हवा, पानी और भूमि का हमारे जीवन बिना असर पड़े नहीं रह सकता हम दूषित वायु में सांस लेगें तो हमें तरह–तरह बीमारियाँ फैलेगीं। पिछलें कुछ वर्षो में सारे भारत वर्ष में लोगों को सबसे ज्यादा स्वाश और फेफड़े की बीमारियां हुई हैं और इनका दिनों–दिन असर बढ रहा है क्या यह चेतावनी नहीं है। यदि हम समय से नहीं सचेत हुए तो प्रकृति हमें छोड़ेगी नहीं इसलिए यह आवश्यक है कि प्रकृति के साथ सामजस्य बना कर चले और अनावश्यक छेड़खानी करें। छेड़खानी के विभिन्न पहलुओं पर अनेक राष्ट्रीय एवं अन्र्तराष्ट्रीय संगोष्ठियॉ हुई हैं। हम यहां पर संक्षेप में इन पहलुओं पर विचार करेंगे।

मिट्टीः–

भारत एक खेतिहर देश है और करीब चौदह (१४) करोड़ हेक्टेयर में खेती होती है लेकिन फिर भी हमारे देश की जनसंख्या का बढ़ा हिस्सा भूखा है। भूमि का दबाव बढ़ता चला जा रहा है। लेकिन उसके पोषक तत्व बढ़ाने है। यदि हम धरती के पोषक तत्व लम्बे समय तक बरकारार रखें तो हमें काफी समय तक पर्याप्त अनाज मिल सकता है। सिंचाई के लिए जल स्त्रोंतों का पर्याप्त उपयोग नहीं हो रहा है। छोटे तालाब बनाने की जगह पर भारी भरकम बांध बनाये जा रहे हैं, चाहे वह नर्मदा सागर बांध हो या बाण सागर। इनके महत्वाकांक्षी उपलब्धियों के हम बखान तो कर सकते हैं, किन्तु लम्बे समय तक में बांध न तो सिंचाई में सहायक होगें और न ही बिजली उत्पादन में बल्कि इनके द्वारा पर्यावरण विकृति उत्पन्न होगी। इन बांधों के किनारे आसपास की जगहों में अवसाद जमा होगें। जमीन अनुपयोगी सिद्ध होगी बड़ी नदियों पर बांध बना देने से उनका जल स्तर कम हो जाता है, उसमें रहने वाले जीव प्रभावित होगे इधर कुछ वर्षों में नदियों का जल स्तर बहुत कम होने से नदियों की गहराई कम होती है फलस्वरूप वर्षा कम, पानी उनमें नहीं आ पाता और बाढ की विनाश लीला प्रारम्भ होती है जीवनदायनी प्राणेता हो सकती है।

बड़े बांधों से बड़ी नहरों की तुलना में छोटे और मझोले तालाब ज्यादा लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं। इनसे वर्षा का जल इकटठा होने के कारण एक तरफ पानी बह कर बाढ़ का रूप नहीं लेगा वहीं दूसरी तरफ भूमि के जल स्तर को ऊपर उठायेगा सिंचाई भी होगी कम खर्च लगेगा ज्यादा

लोगों को काम मिलेगा और डूब में आसपास की कोई जमीन नहीं आयेगी। भारत के लिए पर्यावरणीय दृष्टि कोण से छोटे और मझोले तालाब वरदान साबित हो सकते हैं।

जहा बड़े बांध आसपास की जमीन को डूब के क्षेत्र में लेकर वहा के अनेक वनस्पतियों एवं जीवों के अस्तित्व को खतरा उत्पन्न करतें हैं। वही छोटे तालाब यदि सुनियोजित तरीके से बनाये जाये और उनके चारों तरफ पेड़ लगाये जायें तो ये अनेक चिड़ियों एवं छोटे जीवों के आश्रय दाता होते हैं। देश में पुराने तालाबों की कमी नहीं है। लेकिन ज्यादातर तालाब आज कुप्रबंध के शिकार हैं।

देश के ज्यादातर हिस्से में खेती का तरीका आज भी बहुत पुराना है सिंचाई की व्यवस्था ज्यादातर जमीन के लिए नहीं है खेती अभी भी इन्द्र देवता पर आधारित है, जो हमारे व्यवहार से रूठे रहते हैं। किसान अशिक्षित है। ओर उन तक खेती के विभिन्न तरीकों एवं उनके पर्यावरणीय दृष्टि कोण से वे अपरिचित हैं। रसायनिक खाद की कितनी मात्रा किस मिट्टी के लिए चाहिए इसका समुचित प्रचार प्रसार भी नहीं है। अतएव पर्यावरण संरक्षण की जानकारी प्रदान की योजना चलायी जानी समीचीन होगी

अध्याय–०६
परमाणु आयुधों के उपयोग के बाद की दुनियाँ

मानव में २०वीं शताब्दी के चौथे दशक में परमाणु युग में प्रवेश किया। यह मानव के वैज्ञानिक प्रगति की एक महान उपलब्धि है। रेडियो धर्मिता की मात्रा में गत चार दशकों में ही अधिक वृद्धि हुई है। विकसित एवं विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है, जिसकी पूर्ती हेतु दिन पर दिन अनेक आणविक ऊर्जा केन्द्र स्थापित किये जा रहे हैं। तृतीय विश्व के देश त्वरित विकास की लालसा में ऊर्जा को आर्थिक प्रगति के लिए काम में लेने के साथ–साथ शस्त्रों के निर्माण हेतु भी प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। इस प्रकार आज विश्व में रेडियोधर्मी पदार्थों की क्रियाशीलता द्वारा हुए प्रदूषण का प्रतिफल रेडियोधर्मी प्रदूषण के रूप में व्याप्त हो गया है।

रेडियोधर्मिता

रेडियोधर्मिता एक प्रक्रिया का परिणाम है। कुछ तत्व इस प्रकार के हैं जो अपने विघटन के समय उच्च शक्ति का विकिरण करते है। इन तत्वों के आयन विकरण से किरणें निकलती है। ये सभी विकिरण नाभिकीय अणु के विखण्डन के परिणाम स्वरूप होते हैं।

रेडियोधर्मी प्रदूषणः–

नाभीकीय पदार्थो की क्रियाशीलता द्वारा हुए प्रदूषण को रेडियोधर्मी प्रदूषण कहते है। रेडियोधर्मी पदार्थ नाभकीय शस्त्रों के विस्फोट से उत्पन्न होते हैं। इनमें परमाणु बम सबसे भयंकर है जो घातक प्रदूषण फैलाता है। विश्व में विभिन्न प्रकार के प्रदूषणों की श्रृंखला में सबसे अधिक हानिकारक एवं शापयुक्त यही प्रदूषण है। परमाणु विखण्डन के पश्चात एक धुआं ऊपर वायुमंडल में फैलता है, जिसमें रेडियो एक्टिव कण उपस्थित रहते हैं, जो वायु के साथ–साथ पूरे वातावरण में पहुंचते हैं और वहां के प्राणियों एवं वनस्पतियों पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं।

रेडियोंधर्मी प्रदूषण का प्रभाव सर्वप्रथम जापान में देखा गया। यहाँ अगस्त १९४५ में द्वितीय विश्वयुद्ध के समय हिरोशिमा और नागासाकी में परमाणु बम गिराये गये। इन बमों के रेडियोधर्मी प्रभाव से लाखों लोगों की मृत्यु हो गयी और आज भी इनके प्रभाव से इन क्षेत्रों की संतति प्रभावित है। इसी प्रकार २८ मार्च, १९७९ को यू.एस.ए. में श्रीमाइल आयरलैण्ड रिएक्टर की भीषण दुर्घटना और २६ अप्रैल, १९८६ को सोवियत संघ में चेरमीविल में स्थित रिएक्टर की दुर्घटना से उत्पन्न विकिरणों का प्रभाव दूर क्षेत्रों तक देखने को मिलता है। इस प्रकार के रेडियो प्रदूषण से मानव, वनस्पति तथा जीव जन्तु तथा खाद्य सामग्री प्रभावित होती है। यह प्रदूषण न केवल परमाणु रियेक्टरों से हो रहा है। हाल ही में भारत एवं पाकिस्तान दोनों देशों में परमाणु परीक्षण किये हैं इनका प्रभाव परिक्षण क्षेत्रों में जाकर भलीभांति देखा जा सकता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के श्रोतः–

प्रकृति में विकिरण के विभिन्न श्रोत हैं, लेकिन इनके विकरण की एक निश्चित सीमा ही मानव सहन कर सकता है। रेडियोधर्मी प्रभाव प्राकृतिक और मानवीय दोनों क्रियाओं से होते हैं।

प्राकृतिक रूप से ब्रम्हाण्ड से आने वाली किरणों के द्वारा एवं पार्थिव विकिरणों के द्वारा भी यह प्रदूषण होता है। भू-गर्भ में पाये जाने वाले अनेक रेडियोधर्मी तत्व जैसे- युरेनियम, थोरियम, प्लूटोनियम आदि भी रेडियोधर्मी एवं परमाणु बमों का परीक्षण इत्यादि इस प्रकार के प्रदूषण के प्रमुख श्रोत है। कोबाल्ट थोरियम, कार्बन, स्ट्रन्शियम रेडियोधर्मी प्रदूषण फैलाने वाले बड़े साधन हैं चिकित्सा क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाली एक्स-रे मशीन रेडियोग्रफी से भी रेडियोर्धी प्रदूषण होता है।

रेडियोधर्मी प्रदूषण के प्रभावः-

रेडियोधर्मी प्रदूषण से मानव पर निम्न प्रभाव होते हैं।

१. गर्भाशय में ही शिशु की मृत्यु २. जीन एवं गुण्सूत्रों के लक्षणों में परिवर्तन फलतः अपंग बच्चे पैदा होना ३. त्वचा पर खुजली एवं फफोले का होना ४. त्वचा एवं फेफड़ों का कैंसर हा जाना ५. त्वचा की परत का उखड़ जाना, त्वचा का रिसने लगना तथा गहरे घाव हो जाना ६. सिर के बालों का झड़ना ७. जीवों की प्रजनन-ग्रंथियॉं निष्क्रिय हो जाने से बॉंझता उत्पन्न हो जाना ८. परमाणु धुएं द्वारा आंखों के लेंस का नष्ट हो जाना ९. जीव-जन्तुओं में आनुवांशिक परिवर्तन १०. कार्बनिक यौगिक मिले फलों के सेवन से असमयिक बुढ़ापा, ल्युकेमिया, ब्रेन कैसर तथा तंत्रिका रोगों की उत्पत्ति इत्यादि।

उपरोक्त से प्रभाव डालने वाल रेडियोधर्मी यौगिको का युग शान्त होता प्रतीत नहीं हो रहा है। विचारक कहते हैं कि यदि तृतीय विश्व युद्ध हुआ तो वह न्युक्लियर युद्ध होगा। ऐसी स्थिति में पर्यावरण का शेष रहना ही कल्पना मात्र होगा। क्योकि तादात एवं शक्ति की द्रष्टि से आज ये सामरिक हथियार पूर्व में निर्मित हथियारों से कई गुना शक्तिशाली हैं। इनमें संपूर्ण मानव जाति का १२ बार संपूर्ण विनाश किया जा सकता है। अभी इसकी होड़ कम नहीं हुई, आज भी अनेक राष्ट्र प्रकट में अथवा छिप-छिपाकर विज्ञान की इस टेकनोलाजी का उपयोग शस्त्र निर्माण में कर रहे हैं।

आज के परमाणु विकास में भावी पीढ़ी की उपेक्षा क्यों? मानव जाति को जीवित रहने के लिए ऊर्जा पर खर्च करने के बजाय पारिस्थितिकी -संतुलन तथा पर्यावरण की सुरक्षा पर व्यय करना उपादेय सिद्ध होगा। इससे हम आने वाली पीढियों को धरोहर के रूप में अच्छे संस्कार प्रदान कर सकेगें। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर पर्यावरण-सुरक्षा से मानव जाति के सतत विकास में योगदान कर सकेंगे। परन्तु यदि परमाणु शस्त्रों के उपयोग एवं परीक्षणों का क्रम जारी रहा तो आनेवाली पीढ़ी के विद्यवन्स को रोका नहीं जा सकेगा। अतः इस प्रकार क्षति न पहुचे हमें सचेत रहने की आवश्यकता है। वर्तमान समय की मांग है कि आणविक प्रक्रियाओं (रेडियोधर्मिता) को साफ सुथरी एवं विकसित तकनीक से प्रस्तुत किया जाए।

अध्याय–०७
हरियाली को निगलते विषाक्त कारखाने

हरियाली का सम्बन्ध समस्त प्रणियों से है। हरियाली को प्रदूषित करने वाले कई तत्व मानवीय दुष्क्रियाओं के प्रतिफलन है। हरियाली को प्रदूषित (निगलने) करने में धुआँ उगलते असंख्य वाहन, कल–कारखानों द्वारा आकाश में डाली जा रहीं जहरीली गैसे, कीटनाशक दवाइयां व वनो की अन्धाधुन्ध कटाई प्रमुख है। साथ में यदि पर्यावरण को बचाने के उपायों पर नजर डाली जाए तो प्राकृतिक फेफड़े कहे जाने वाले पेड़–पौधे ही सबसे उपयोगी नजर आते हैं। विभिन्न प्रकार के उद्योगों के फलस्वरूप विशेषकर रासायनिक उद्योगों, सीमेंन्ट, इस्पात, खाद कारखानों, चमड़ा उद्योगों तथा अन्य उद्योगों की याज्य सामग्रियाँ, विषैली गैस, वायुमंडल में पहुचकर हवा को दूषित करते हैं, जिनमें कार्बन मोनोआक्साइड, सल्फर–डाइआक्साइड, कार्बन–डाइआक्साइड, फ्लोराइड नाइट्रोजन–डाइआक्साइड, ओजोन परआक्सी एसिटिल नाइट्रेट (PAN), तथा पार्टिकुलेट मैटर (प्रदूषण कणिकाएं) विशेष रूप से दुष्प्रभावी हैं।

उपयुक्त समस्त प्रदूषकों का पौधों पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है–

१. **प्रत्यक्ष प्रभावः–** ये दो प्रकार के होते हैं– तीक्ष्ण और दीर्घकालीन। तीक्ष्ण क्षति वह है जिसमें कोशिका भित्ति असंतुलित हो जाती है, जिससे कोशिकीय पदार्थ समाप्त हो जाते हैं और कोशिकायें भर जाती हैं। अधिक प्रदूषण में थोड़ी देर रहने पर ये लक्षण २४ घंटे के अंदर ही देखे जा सकते हैं। दीर्घकालीन लक्षण पौधों में सामान्य कोशिकी क्रियांओं के क्रमशः प्रभवित होने पर उत्पन्न होते हैं। पत्तियों में धीरे–धीरे हरियाली कम होती जाती है और अन्त में वे रंगहीन हो जाती है तथा तीक्ष्ण क्षति जैसे लक्षण दिखने लगते हैं और अन्त का जल्दी झड़ जाना भी दीर्घकालीन लक्षण है, जो अल्प प्रदूषण में लम्बे समय तक रहने के कारण होता है।

२. **अप्रत्यक्ष प्रभावः–** वायु प्रदूषण के कारण पौधों की कार्यकीय तथा जैवरासायनिक क्रियाओं में अवांछित परिवर्तन होता है जिससे पौधो की वृद्धि और विकास रूक जाता है तथा उत्पादित प्रजनन पर भी प्रभाव पड़ता है। पौधो की अन्य कार्यकीय एवं जैव रासायनिक क्रियाएं, जैसे श्वसन वाष्पोत्सर्जन, रन्ध्रक्रियाओं तथा एन्जाइमों पर भी वायु प्रदूषकों का अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। पराग कणों और पराग नालिका के विकास पर भी प्रदूषको का प्रभाव पड़ता है।

पादप अविषालुता

पौधों पर विभिन्न प्रकार के वायु प्रदूषण का हानिकारक प्रभाव अलग–अलग प्रकार का होता है और पौधों की प्रतिक्रियाएं भी भिन्न–भिन्न होती है।

१. **सल्फरडाइआक्साइडः–** यह पौधों में मुख्यतः रन्ध्रों द्वारा पादप–ऊतकों में पहुंचता है और कोशिका भित्ति की सतह पर जल–सम्पर्क होने पर इससे गन्धक के अम्ल (H_2SO_3 और H_2SO_4) बन जाते हैं। इसलिए कोशिका रस की अम्लीयता (pH) बढ़ जाती है। सल्फरडाइआक्साइड के प्रभाव से क्लारेफिल–ए कायोफाइटिन में बदल जाता है इस क्रिया को फीयोकाइटेनाइजेशन कहते हैं जिसमें पर्णहरित के अणुओं से मैगनीशियम आयन अलग हो जाते हैं। अभी तक हुए शोध कार्यो से SO_2 की पादप अविषालुता के विषय पर निशिचत

तौर पर कुछ कहना कठिन है। लेकिन O_2 के प्रति संवेदनशीलता के आधार पर पौधे तीन वर्गों में बांटे जा सकते हैं–

i. संवेदी – जौ, कपास, ओट, सोयाबीन, गेहूँ, कद्दू, लौकी, बैगन, मटर, आलू,पालक, मूली और आम।

ii. मध्यम– अरण्ड, अरहर, गुड़हल, गुलाब, तम्बाकू, अमरूद, जामुन, नीम और युकेलीप्टस।

iii. प्रतिरोधी – मक्का, कुमुदिनी, देवदारू, नीबू, पापरी, बबूल, जंगल– जलनी, शीशम, इमली, पीपल, बरगद अशोक और बेर।

सल्फर डाआक्साइड के प्रभाव से चौड़ी पत्तियों में क्रमरहित, द्विपृष्ठी तथा शिराओं के मध्य स्थलों में सफेद से लेकर भूरा रंग, हरियाली की कमी तथा ऊतकक्षय प्रायः एक साथ देखे जा सकते हैं। घांस की पत्तियों (विशेषकर बड़ी शिराओं के बीच) में इसी प्रकार के रंगों की लम्बी धारी दिखाई देती है।

२. **कार्बनडाइआक्साइडः–** ग्रीन हाउस को प्रभावित करने वाली गैसी में कार्बन–डाइआक्साइड सबसे प्रमुख है। पेड़ पौधे प्रकाश संश्लेषण क्रिया से CO_2 ग्रहण करते हैं। पेड़ों के कटने से वायुमंड़ल में CO_2 की मात्रा में वृद्धि हो रही है, तापक्रम बढ़ रहा है। मौसम के बदलाव से अत्यधिक गर्मी, सूखा, पानी की कमी, वर्फीली चोटियों का पिघलना तथा समुद्र का जलस्तर ऊंचा उठ जाना आदि सम्भावित खतरे हैं। परिणाम स्वरूप फसलों पर इसका बुरा असर पड़ेगा तथा शरीरिक विकार उत्पन्न होगें।

३. **कार्बन–मानोआक्साइडः–** कार्बन–मोनोआक्साइड अत्यधिक खतरनाक होती है, क्योंकि इसके एक लाख में एक भाग की उपस्थिति से ही बीमारी उत्पन्न हो सकती है। यह गैस हीमोग्लोबिन में आक्सीजन की अपेक्षा शीघ्र घुल जाती है। तथा हीमोग्लोबिन से मिलकर कार्बोक्सीहीमोग्लोबिन का निर्माण करती है। नतीजन शरीर के विभिन्न भागों को आक्सीजन न मिलने के कारण व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है।

४. **फ्लोराइडः–** पौधों में फ्लोराइड मुख्य रूप से रन्ध्रों द्वारा पहुंचता है तथा सीधे ऊतको में प्रवेश करता है अथवा पानी में घुलकर परिसंचरण ऊतकों द्वारा सीधे पत्तियों के किनारे पहुंचकर एकत्र होता है। इससे पादप अविषालुता काफी जटिल होती है। यह मुख्यरूप से प्रकाश–संश्लेषण, शासन, प्रोटीन संश्लेषण, कोशिकाभित्ति निर्माण, ऊर्जा सन्तुलन आदि पादप क्रियाओं को संचालित करने वाली एन्जाइमों की प्रभावित करता है। कुछ एन्जाइमों के लौह एवं मैग्नीशियम धातु से यह क्रिया कर फ्लोरो–फास्फेट जैसे जटिल पदार्थ बनाता है। यह कैल्शियम के साथ अविलेय कैल्शियम फ्लोराइड बनाता है जिससे पौधों को कैल्शियम की पर्याप्त मात्रा नहीं मिल पाती है। कुछ घासों में फ्लोरोएसिटिक अम्ल बनते हैं जो चरने वाले पशुओं को हानि पहुंचाते हैं।

फ्लोराइड पौधों में जैविक क्रियाएं सम्पन्न करने वाले सभी प्रमुख अंगों में संचित हो जाता है जिससे सारे पादप जीवन को हानि पहुंचती है। फ्लोराइड़ों के लिए क्रमशः मक्का, नीबू, जौ, सन्तरा, सेब, गुलाब आदि संवेदी होते हैं। टमाटर, गेहूं, सूर्यमुखी, मूली आदि पौधे फ्लोराइड प्रदूषण के प्रतिरोधी होते हैं।

फ्लोराइड प्रदूषण के कारण कुछ विशेष प्रकार के लक्षण दिखाई देते हैं। जैसे– पत्तियों के किनारे जले हुए से तथा रंग लाल होता है, किनारे के ऊतक क्षतिग्रस्त तथा मरे हुए होते हैं और उनके पास ही हरियाली की कभी भी दिखाई देती है। कुछ पौधों में ऊतकक्षय वाले क्षेत्र मुड़कर गिर भी जाते हैं। घास की पत्तियों के अगले भागों में ऊतकक्षय और पीछे की ओर क्रमरहित धरियाँ दिखाई देती है। पौधों की पत्तियाँ छोटी होने लगती हैं, वृक्षों की बाढ़ मार जाती है और टहनियाँ अधिक फैलने लगती हैं। फल कम लगते हैं तथा लगे हुए फल झड़ने लगते हैं। इसकी अधिकता से पत्तियों में विशेष प्रकार के लक्षण दिखने लगते हैं जैसे ऊपरी सतह पर लाल भूरे रंग के धब्बे और लाल एवं सफेद क्षेत्र बन जाते हैं। द्विपृष्ठी ऊतकक्षय के क्षेत्र भी बनते हैं और पत्तियाँ शीघ्र ही परिपक्व हो जाती हैं।

५. **ओजोनः–** ओजोन के प्रभाव से पत्तियों के रन्ध्र धीरे–धीरे बन्द होने लगते हैं और उनके गैस – विनिमय पर प्रभाव पड़ता है। रन्ध्र पूर्णतः बन्द होने के पहले ही ओजोन की अधिक मात्रा ऊतको तक पहुंच जाती है ओजोन की आक्सीकरण की क्षमता अधिक होने से भी पादप क्रियाएं प्रभावित होती है। ओजोन के प्रति टमाटर, तम्बाकू, गेहूं, आलू, पालक, प्याज आदि पौधे काफी संवेदी होते हैं और कपास, लौकी, गाजर अति प्रतिरोधी होते हैं।

६. **PANः–** पर आक्सी एसिटिल नाइट्रेट पौधों के हरे ऊतको में पहुंचकर ऊतकों को नम कर देता है। इससे मध्योन्तर कोशिकाएं भी नष्ट हो जाती है। और पत्तियों की नीचे वाली सतह चमकीली, चांदी या ताम्बे के से रंग की हो जाती है। कुछ पौधों में ये लक्षण दोनों पर होते हैं। पौधे प्रौढ़ होने लगते हैं। घासों में भी क्षति पीले या लाल रंग की क्रमरहित पट्टियों के रूप में होती है जिससे हरियाली की कमी जैसी दिखने लगती है।

७. **नाइट्रोजन–डाइआक्साइडः–** नाइट्रोजन–डाइआक्साइड की ज्यादा मात्रा होने के प्रभाव से भी चौड़ी पत्तियों में क्रमरहित, द्विपृष्ठी तथा शिराओं के मध्य स्थलों में सफेद से लेकर भूरा रंग, हरियाली की कमी तथा ऊतकक्षय हो जाते हैं। NO_2 की थोड़ी मात्रा होने पर काफी समय बाद पत्तियां जल्दी झड़ने लगती हैं।

८. **पार्टीकुलेट मैटर (प्रदूषणकारी कण)ः–** हवा में फैले प्रदूषणकारी कण पौधों की सतह पर कई भागों पर जमा होते हैं। अगर वनस्पतियों की पत्तियाँ खुरदुरी हो व आच्छादन बड़ा हो तो इनकी प्रदूषण धारण क्षमता बहुत होगी तथा यदि प्रदूषण की या पौधों की सतह भीगी या चिपचिपी हो तो प्रदूषण धारण क्षमता अत्यधिक हो जाती है। पार्टीकुलेट मैटर पौधों की पत्तियों में उपस्थित स्टोमेटा (रन्ध्रों) को बन्द कर देते हैं जिससे पौधों की कार्यकी प्रभावित हो जाती है। ओर पौधे का जीवनकाल प्रभावित हो जाता है।

अन्तरंग कलखाने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हरियाली को प्रभावित करते हैं जिससे जंगलों का विनास हो रहा है फसलों को क्षति पहुंचती है जिससे विश्व की स्वास्थ्य एवं आर्थिक स्थिति दिनों दिन प्रभावित हो रही है।

अध्याय–०८
प्रदूषण और मानव स्वास्थ्य

क्षिति, जल, पावक, गगन एवं समीर से निर्मित मानव शरीर का भरण –पोषण एवं विकास पर्यावरण पर निर्भर करता है। मानव एवं अन्य प्रणियों के कल्याण के लिए प्रत्येक जीव, जितना आंतरिक परिवेश पर निर्भर है उतना ही बाहरी परा–तत्वों पर भी। जल, पर्णसमूह, वायु, अग्नि, प्रकाश, पृथ्वी तथा ध्वनि इसके साथ खगोलीय ग्रह, सितारे इत्यादि भी पर्यावरण के विभिन्न अवयव हैं। इस सबके अतिरिक्त समाज का मानसिक स्वास्थ्य पर्यावरण के एक अन्य महत्वपूर्ण अवयव का निर्माण करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य को परिभाषित किया है कि ''स्वास्थ्य वह अवस्था है जब व्यक्ति न केवल रोग अथवा कमजोरी से मुक्त होता है बल्कि शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक रूप से पूर्णतया स्वस्थ्य रहकर सामाजिक एवं अर्थिक द्रष्टि से एक अच्छा जीवन व्यतीत कर सकता है।''

सामान्यतः मानवीय स्वास्थ्य पर अपना प्रभाव डालने वाले पर्यावरणीय घटकों। तत्वों को निम्नानुसार तीन श्रेणियों में बाटा जा सकता है।

भौतिक तत्वः– जल, हवा, मृदा, गृह, अपशिष्ट, तापमान, विकिरिण इत्यादि।

जैविक तत्वः– वनस्पतीय, सूक्ष्म जीव, जैविक सूक्ष्म जीव, जीवाणु, वायरस, कृन्तक, पशु एवं वनस्पतियाँ आदि।

सामाजिक तत्वः– रीतिरिवाज, संस्कृति, स्वभाव, धर्म, व्यवसाय, आमदनी के श्रोत, रहन सहन, एवं मानसिक स्तर इत्यादि।

विकासशील राष्ट्र जो आज भी घर, कपड़ा, खाना, शुद्ध एवं स्वच्छ पीने का पानी, मल–मूत्र निपटान व्यवस्था जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को जुटाने में लगे हुए हैं। वहाँ का जीवन स्तर इसके अतिरिक्त प्राकृतिक आपदाऐ कई पर्यावरणीय प्रकोप यथा बाढ़, तूफान एवं भूकम्प मानव–समुदाय को समय–समय पर आक्रांत करते रहे हैं। न केवल सुरक्षाएवं भरण–पोषण के लिए अपितु विकास के लिए भी मानव द्वारा इन प्राकृतिक आपदाओं को पराभूत करने के प्रयास किए गए हैं। परंतु आज, दुर्भाग्यवश मानव सदियों से अपने भरण–पोषण एवं विकास के प्रयास में पर्यावरण को प्रदूषित करने वाला सबसे बड़ा घटक बन गया है। परिणाम स्वरूप मानव जाति अन्य प्राणियों का स्वास्थ्य आज दाव पर लग गया है। ब्रम्हाण्ड की प्रत्येक वस्तु केवल उसके उपभाग एवं अधिकार के लिए ही है ऐसा ही मानकर वह विकास की अंधाधुंध दौड में लिप्त हो गया है। अपने आप को प्रकृति का संचालक समझने वाला सबसे बड़ा अवयव बन गया है। मानव समुदाय के भीतर कई विभिन्न श्रेणियाँ बन गई हैं और इस स्तर भेद ने ऐसी समस्याओं को जन्म दिया है जो प्रदूषण कारण बन गई हैं।

अत्यधिक वनोन्मूलन, जल स्त्रोतों का अपर्याप्त (अल्प) प्रबंधन, प्रकृति के अपुनरूत्पादनीय धन का अनियंत्रित उपयोग, प्रदूषकों के यथोचित निस्तारण न करने वाले अनियंत्रित उद्योग, वाहनों (पेट्रोल/डीज़ल) से निकलने वाले धूएँ/शोर इत्यादि के कारण पहले से कहीं अधिक स्वास्थ्य संबंधी

समस्याए उत्पन्न हो रही हैं। अविकसित एवं विकासशील राष्ट्रों में जहाँ गरीबी के साथ-साथ कुपोषण भी समान रूप से फैला हुआ है, संक्रामक व्यधियॉं जैसे परजीवी उत्पीड़न, मलेरिया, मौसमीय व्याधियां तथा वायु एवं जल प्रदूषण से होने वाली अनेकानेक व्याधियॉं आज मानव-स्वास्थ्य के लिए बहुत बड़ा खतरा बन गई हैं।

विश्वभर में विभिन्न कराणों से हो रहा व्यापक वनोन्मूलन वातावरण के औसत तापमान को अप्रत्याशित ढंग से बढ़ा रहा है, जिससे मौसमीय ढांचे में कई नाटकीय परिवर्तन हो रहे हैं। तूफान की अवधि एवं तीव्रता में भी वृद्धि हो रही है तथा उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में नान प्रकार की विकट व्यधियां फैल रहीं हैं। ध्रुवों पर स्थित बर्फ के पिघलने का भी अंदेशा है और फलस्वरूप सागर-तल में वृद्धि की भी संभावना है। वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप सागर-तल में वृद्धि की भी संभावना है। वनोन्मूलन के परिणामस्वरूप जो बाढ़ आती है, उससे जान-माल का भयानक नुकसान होता है तथा कई प्रकार के संक्रामक रोग भी उत्पन्न होते हैं। प्रदूषित पानी उत्सर्जित करने वाले उद्योग तथा कीटनाशकों, पीडकनाशियों एवं नाइट्रोजन तथा फॉस्फेट आदि खादों पर आधारित आधुनिक कृषि, जल एवं थल में ऐसे रसायनों का संचार करते हैं जो तमाम जीवों के स्वास्थ्य के लिए निहायत हानिकारक साबित हो रहे हैं।

इसके अतिरिक्त, विकासशील एवं अविकसित देशों में सीवेज या सीधे ही अथवा अपरोक्ष रूप से पीने के पानी के जलाशय अथवा वितरण-प्रणाली में श्राव होने से पीने के पानी को दूषित करता है, जो मानव के उपभोग व स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है।

उद्योगों से निकलने वाले जहरीले धुएँ, वाहनों से निकलने वाले धुएँ तथा घरों एवं अन्य स्थानों में विशेष सामग्री एवं रसायनों को ईंधन के तौर पर जलाने से होने वाले धुएँ से प्रत्येक वर्ष लगभग ३ करोड़ लोगों की मृत्यु होती है। अधिकांश मौतें श्वास एवं दिल संबंधी रोगों के कारण होती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अधिकांश मौतें विकासशील तथा अविकसित देशों में हुई हैं। क्योंकि वहां आज भी खाना बनाने हेतु पारम्परिक स्त्रोतों जैसे गोबर, लकड़ी, कागज इत्यादि का उपयोग किया जाता है। इन स्त्रोतों के धुएँ से होने वाला प्रदूषण श्वास एवं हृदय संबंधी तकलीफों को जन्म देता है। उद्योगों एवं वाहनों से निकलने वाला धुआँ ओज़ोन-रक्षा-परत को भी प्रभावित करता है। परिणामस्वरूप यह परत काफी पतली होती जा रही है, जिससे सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणें सीधे पृथ्वी पर पड़ती हैं। इन किरणों के प्रभाव से त्वचा संबंधी विकार उत्पन्न होते हैं।

घरों, कार्यस्थलों तथा व्यवसायिक केन्द्रों के आस-पास व्याप्त प्रदूषण से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि विकसित देशों में आंतरिक उपचार वार्ड में आने वाले रोगियों में से १०% रोगी जोखिमकारी पर्यावरणीय प्रदूषण का शिकार होते हैं। श्वास एवं तंत्रिकापेशी वार्ड में आने वाले इन रोगियों का प्रतिशत जोखिमकारी पर्यावरणीय प्रभाव के कारण अधिक है। यह देखा गया है कि ऐसे जोख्मिकारी पदार्थों का स्वास्थ्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है, जो स्वास्थ्य संबंधी सामान्य विकार से एक बड़ी बीमारी तक का कारण बन सकते हैं।

कुछ सामान्य पर्यावरणीय घटकों तथा स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव को निम्नानुसार श्रेणीबद्ध किया जा सकता है-

८.१ जल प्रदूषण तथा स्वास्थ्य

जल प्रदूषण प्रकृति की अनमोल देन तथा जीवन का मूलभूत आधार है जिसका कोई विकल्प नहीं है, इसलिए जल को अमृत या जीवन भी कहा गया है। हमारे ७०%, सब्जियों में ६५% तथा मांस में ६०% जल पाया जाता है तथा पृथ्वी का तीन चौथाई भाग जल है। परन्तु इस प्रचुर जल संसाधन का केवल ०.०१% भाग ही पीने के लिए हमें उपलब्ध है। कैसी विडम्बना है कि जल बिन मीन प्यासी जल की अनन्त राशि होते हुए भी मानव उपयोगी जल की मात्रा सीमित है और इसे भी हम प्रदूषित करना आति निन्दनीय है अनुमान है कि विश्व के लगभग ८०% जल स्त्रोतों का पानी पीने लायक नहीं है और इसकी कमी विकराल रूप धारण कर चुकी है। चाहे भूपृष्ठीय जल हो या भौम जल, वस्तुतः जिन वस्तुओं की उपस्थिति से इनमें प्रदूषण होता है वे हैं– भारी धातुएं, विषैले कार्बनिक पदार्थ, सूक्ष्मजीव, प्रबल अम्ल तथा क्षार, मृदा क्षरण से प्राप्त ठोस पदार्थ उर्वरक, पीड़कनाशी, कीटनाशी आदि प्रमुख हैं। जल प्रदूषण से विषैले तत्व मिट्टी में आ जाते हैं और भूमिगत जल को दूषित करते हैं। एक बार इस जल के दूषित हो जाने पर इसे साफ करना दूरूहकार्य हो जाता है। फिर ये हानिकारक तत्व वहां उगने वाली वनस्पतियों व जीवों में प्रवेश करके पुनः भोजन के साथ मनुष्य के शरीर में जाकर मानव स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा करते हैं तथा हमें अनेक रोगों का सामना करना पड़ता है।

वर्तमान में हमारे देश में बंगाल में आर्सेनिक प्रदूषण व राजस्थान में फ्लोराइड प्रदूषण से ही आन्त्र शोथ, पेचिस, पीलिया आदि बिमारियाँ फैलती हैं। कुछ साधारण जलीय रोग हैं–

(क) जैविक–जलीय रोग– हेपेटाइटिस ए तथा ई, पोलियो, मेरूरज्जुशोध, टाइफॉइड (आन्त्रज्वर) दण्डाणुज पेचिश, हैजा, कृमि गसन – गोल क्रमि, गिनि क्रमि इत्यादि

(ख) एकत्रित जल भी मक्खी, मच्छर तथा कीड़ों को उत्पन्न कर समता है, जो मलेरिया, फिलेरिया आदि रोग उत्पन्न करते हैं।

८.२ वायु प्रदूषण तथा स्वास्थ्य

जीवन की प्रमुख आवश्यकता शुद्ध वायु है। मनुष्य प्रतिदिन जो कुछ भी ग्रहण करता है उसका ८०% भाग वायु ही होती हैं हम २४ घंटे में लगभग २२,००० बार सांस लेते हैं जिसकी मात्रा लगभग ३५ गैलन या १६ कि.ग्रा. वायु होती है। यदि हम इसकी तुलना एक मोटर गाड़ी से करें तो, एक मिनट में वह जितनी ऑक्सीजन खर्च करती है, उतनी ११३५ व्यक्ति सांस लेने के लिए उपयोग करते हैं। एक अनुमान के अनुसार, १०० वर्षों में २४ लाख टन ऑक्सीजन वायु में समाप्त हो चुकी है और उसकी जगह कार्बनडाई ऑक्साईड गैस ले चुकी है जिसका कुप्रभाव हम स्वयं देख रहे हैं। इन तथ्यों के बावजूद CO_2, SO_2, CO, CFC तथा H_2S आदि हानिकारक गैसें प्रतिदिन वातावरण में ७०–८०% तक किसी न किसी रूप में छोड़ी जाती हैं। इन सबके अतिरिक्त NO_2, SO_3, O_3 आदि गैसें भी वायु को प्रदूषित कर रही हैं इन प्रदूषकों का मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव आगे तालिका में दिया गया है दिए गये विवरण से समझ सकते हैं। ये विभिन्न वायु प्रदूषक मानव स्वास्थ्य पर अनेक दुष्प्रभाव डालते हैं। वायुमण्डल में इन विषाक्त गैसों की उपस्थिति के कारण स्मॉग (धूम) का निर्माण होता है, लन्दन एवं लॉस एंजेल्स में स्मॉग के निर्माण से हजारों व्यक्तियों

की मृत्यु हो चुकी है। इसी प्रकार हमारे देश में मिक गैस से भोपाल में हजारो लोग मौत और विकलांगता के शिकार हो चुके हैं।

इन प्रदूषकों के दुष्प्रभाव से वनस्पतियां भी अछूती नहीं रहती हैं। इन जहरीली गैसों से पेड़ पौधों में पेन (PAN) नामक विषैले यौगिक का निर्माण होता है तथा ये वनस्पतियाँ मृत हो जाती हैं। अम्लीय वर्षा से मिट्टी एवं वनस्पतियों के अतिरिक्त भवनो को गम्भीर क्षति पहुंचती है। इन सबके अतिरिक्त घरेलू प्रदूषण पर हमारा ध्यान कम ही जाता है जो कम घातक नहीं है। ग्रमीण इलाको में ईंधन के लिए लकडी का प्रयोग होता है जिससे अत्यधिक मात्रा में कार्बन मोनोआक्साईड गैस निकलती है, इसका दुष्प्रभाव गर्भस्थ शिशुओं पर भी पड़ता है। लकड़ी के धुएं में उपस्थित फार्मल्डीहाईड फेफड़ों के रोग तथा त्वचा संबंधी रोगों को जन्म देता है। इसी धुएं में उपस्थित 'बेन्जापाईटीन' कैन्सरजन्य है।

८.३ ध्वनि प्रदूषण तथा स्वास्थ्य

अपने दिन-प्रतिदिन के जीवन में हम सामान्यतः इस पर्यावरणीय घटक पर ध्यान नही नहीं देते। यद्यपि ध्वनि (शोर) जिसे अनावश्यक ध्वनि के रूप में परिभाषित किया जाता है, बढ़ते हुए शहरीकरण के कारण अत्यधिक विकृतियों को जन्म दे रहा है।

प्रतिदिन ८५ दशमलव तक का ध्वनि प्रत्यक्षीकरण मानव स्वास्थ्य पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं डालता। परंतु अधिक वॉट के स्पीकरों, वाहनों के हार्न तथा ध्वनि एवं अधिक औद्योगिक ध्वनि से निम्नलिखित विकारों की वृद्धि की घटनाएं देखने में आती हैं-

(i) श्रवण श्रान्ति- मानव को कानों में वलयन संवेदना के साथ-साथ श्रान्तिता (थकान) भी हो जाती है।

(ii) बधिरता

(iii) नींद न आना

(iv) चिड़चिड़ापन तथा जीवन दर में कमी

(v) उच्चरक्तचाप जैसे दोषों में वृद्धि

(vi) कार्यकुशलता पर दुष्प्रभाव

समय रहते इस महत्वपूर्ण पर्यावरण घटक ध्वनि पर ध्यान देकर तथा इसके बढ़ते प्रदूषण को नियंत्रित करके हम स्वस्थ्य रह सकते हैं।

८.४ विकिरण प्रदूषण तथा स्वास्थ्य

मानव का काफी समय से पर्यावरणीय विकिरणों से प्रत्यक्षीकरण होता रहा है, इससे उसके स्वास्थ्य पर भी थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ता है। अत्यधिक विकिरणों के बढ़ते प्रयोग से जैसे कि एक्स-रे मशीन तथा रेड़ियो समस्थानिक (आइसोटॉपिक) इत्यादि से मानव स्वास्थ्य पर कई दुष्प्रभाव पाए गए हैं जैसे -

१. कैन्सर

२. बांझपन

३. भ्रूण विकासात्मक दोष

४. गुणसूत्री विपथन

८.५ ई. आवास

आवास एक ऐसा प्रारंभिक पर्यावरण है जो न केवल हमें छत (घर) प्रदान करता है अपितु अन्य आवश्यकताओं की पूर्ती भी करता है। मानव स्वास्थ्य को बनाये रखने में सहायक आवासीय तत्व हैं: इसका सामीप्य अथवा इसकी परिस्थिति, खुली जगह, प्रचुर स्वच्छ वायु, आच्छादित अपवहन तंत्र, प्रभावकारी सफाई प्रबन्ध तथ मल- मूत्र निपटान, प्रचुर मात्रा में सूर्य के प्रकाश की उपलब्धता, स्वच्छ पीने के पानी के स्त्रोत इत्यादि उपर्युक्त तत्वों में कमी से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तौर पर कई प्रकार की व्यधियां उत्पन्न हो रही है।

१. **श्वसन रोग** – जैसे सामान्य सर्दी, क्षयरोग (ट्यूबर क्युलोसिस), रोहिणी (डिफथिरीया), खसरा अत्यंत भीड़-भाड़ वाले क्षेत्रों में एक से अन्य व्यक्यिों में फैलने वाले रोग हैं। सामान्यतः कई उद्योगों एवं खान क्षेत्रों में धूल, रसायन तथा गैस वायु को प्रभावित करते हैं। वहाँ काम करने वाले लोग अस्थमा, श्वासनली शोथ अथवा पुरने प्रतिरोधात्मक फुफ्फुसीय रोग (Chronic obstructive pulmonary disease, COPD) से पीड़ित होते हैं। ऐस्बेस्टॉस से सम्बद्ध ऐस्बेस्टॉसिस सी.ओ.पी.डी. का एक मुख्य कारण है। धूम्रपान न केवल धूम्रपान करने वाले व्यक्ति विशेष को अपितु, अप्रत्यक्ष रूप से आस-पास उपस्थित लोगों को भी प्रभावित करता है।

२. **दुर्दम रोग** (Malignancies):- कई प्रकार के दुर्दम रोगों को बारे में यह समझाा जाता है कि वो तम्बाकू के साथ-साथ अन्य प्रदूषणकारी कारणों से होते हैं। उदाहरण के तौर पर त्वचा का कैंसर सौर-विकिरण, संखिया, कोलतार एवं कालिख द्वारा जनित प्रदूषण से, फेफड़े का कैंसर ऐस्बेस्टॉस, निकेल, रेडॉन एवं अन्य रेडियोंधर्मी तत्वों द्वारा तथा पैरानेसल साइनसेस कैंसर (Paranasol Sinnses cancer) क्रोमियम, निकेल एवं चमड़े की धूल इत्यादि के कारण गुरदे का कैंसर संख्यिा एवं विनाइल क्लोराइड के कारण, बोन मैरो मेलिग्लेन्सिस बेन्जीन एवं रेडियोधर्मिता के कारण एवं मूत्राशय का कैंसर एरोमेटिक एमिन्स के कारण होता है।

३. **हृदय धमनी रोग** [Coronary Artery disease (**CAD**)]:- कार्बन-मोनो ऑक्साइड, जिससे विशेषकर घर में भट्टी (चुल्हा) पर खाना बनाने की प्रक्रिया के साथ अथवा कार्यस्थल मे, वाहनो से निकलने वाले धुएँ के सामीप आदि से, प्रत्येक्षकरण सामान्यतया होता रहता है, से व्यक्ति कम उम्र में हृदय धमनी रोग अथवा तीव्र हृदय धनी रोग का शिकार हो जाता है। यह हीमोग्लोबीन तथा विषेधक सूत्री विभाजक उपापचयी द्वारा आक्सीजन की कमी हाने से उत्पन्न होता है। मेथलिन क्लोराइड जिसको प्रयोग पेंट उतारने के लिए विलायक के रूप में किया जाता है, कार्बनमोनो ऑक्साइड में परिवर्तित हो जाता है, जो उल्लिखित कैड को जन्म देता है। रेयन (अप्राकृतिक रेशम) के निर्माण में प्रयुक्त होने वाला रसायन कार्बनडाइसल्फाइड ऐथिसरोस्क्लेरिसिस की दर को बढ़ाता है।

४. **यकृत रोग** (Liver disease):- वायरल इन्फेक्शन की अनुपस्थिति में शराब पीने अथवा अन्य नशें के प्रयोग, जीवविष को जिगर की क्षति का कारण माना जा सकता है। जीव-विष जिगर के कोशाणुओं अथवा पैत्तिक वृक्ष को क्षति पहुंचाता है। कार्बन टेट्राक्लोराइड, जो या तो

घुलनशील द्रव्य के रूप में अथवा तरल पदार्थों को साफ करने के लिए प्रयुक्त होता है, के साथ-साथ यकृत-विषालु करको की लंबी सूची में कई पीड़कनाशी एवं पेंट-वगैरह के साथ प्रयुक्त पदार्थों का उल्लेख है।

५. **गुर्दा रोगः-** सीसे के प्रत्यक्षिकरण से उच्च रक्तचाप के साथ गुर्दा खराब होने के स्थायी लक्षणों में भी वृध्दि पाई गई है। यह अनुमान लगाया जाता है कि हाइड्रोकार्बनिक पदार्थ (जैसे गैसोलीन, पेंटविलायक आदि) कई प्रकार के वृक्क रोग को उत्पन्न करने में या बढ़ाने में काफी मदद करते हैं।

६. **परिधीय तंत्रिका रोगः-** कार्बनिक विलायक जैसे एन-हेक्सेन, भारी धातु जैसे कई लेड आर्सेनिक कार्बनिक-फॉस्फेट यौगिक परिधीय तंत्रिकाओं के तंत्रिकाक्ष को क्षति पहुंचा सकते हैं। डाइमेथिल-ऐमीनों-नाइट्राइट जैसा औद्योगिक उत्प्रेरक मूत्राशय तंत्रिका संबंधी दोष (स्वायत्त तंत्रिका दोष) उत्पन्न करता है। तंत्रिका फंसाव जैसे कि मणिबंधिका सुरंग संलक्षण तथा पार्श्व जानुपृष्ठ तंत्रिका संलक्षण कई प्रकार के व्यावसायिक एवं कार्य स्थलों से संबंधित कार्य प्रणालिओं एवं अंतर्निहित शारीरिक एवं मानसिक दबावों के कारण होते हैं।

७. **स्नायु मनो विकृति दोषः-** थकान, स्मृति लोप, ध्यान में कमी, भावात्मक चंचलता, आदि विकार टाउलीन जैसे विलायकों के अधिक संसर्ग में रहने के कारण होते हैं। लेड, आर्सेनिक तथा मैंगनीज़ जैसे धातु, ऑर्गेनोफौस्फेट जैसे पीड़कनाशी तथा कार्बन-मोनोआक्साइड जैसी गैसें मनुष्य में स्नायु-मनोविकृति एवं जनन-संबंधी विकृतियां उत्पन्न करती हैं।

८. **रोग-निरोधक क्षमता में कमी, स्वप्रतिक्षण एवं अति संवेदनशीलताः-** कई रसायन हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को भी प्रभावित करते हैं। पीड़कनाशियों के प्रत्यक्षीकरण से सामान्यतः ट्यूमर एवं संक्रमण आदि रोगों में वृध्दि होती है। मरकरी डाएल्ड्रिन एवं मिथाइल क्लोरऐन्थ्रीन स्वप्रतिरक्षण प्रतिक्रियाको जन्म देते हैं। कई रसायन शक्तिशली एलर्जी संवेदक होते हैं तथा त्वचा एवं श्वास संबंधी विकार उत्पन्न करते हैं और साथ में यदि कुपोषण की समस्या भी हो तो इन बीमारियों की आवृत्ति एवं उनसे होने वाले खतरों में असमान्य वृध्दि होती है।

विभिन्न प्रदूषकों का निम्न-स्तरीय प्रत्यक्षीकरण भी हम पर उप-नैदानिक प्रभाव डाल सकता है, इसलिए हमें इन पर अधिकाधिक ध्यान देना चाहिए। अतएवं प्रदूषकों के निम्नस्तरीय प्रत्यक्षीकरण के कैन्सरजनीय एवं अकैन्सरजीन दोनो ही प्रकार के प्रभावों पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है। सीसित पेट्रोल, सीसा आधारित रंग, सोल्डर तथा खाद्य पदार्थों के डिब्बों में प्रयुक्त होकर सीसा अनेक माध्यम से जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को प्रभावित कर रहा है। इस प्रकार के निम्नस्तरीय प्रत्यक्षीकरण से शिशुओं एवं बच्चों में मानसिक विकृतियां तो जन्म ले ही रही हैं, साथ ही साथ उनके चलते वयस्को में उच्च रक्तचाप की शिकायत भी हो सकती है।

६. **चर्म विकारः-** जैसे भीड़ भाड वाले क्षेत्रों में लोगों में खुली एवं कुष्ठ रोग भी अत्यधिक पाया जाता है।

१०.**प्लेगः–** मुख्यतः चूहों से फैलता है, अस्वास्थ्यकारी जगहों, खुला सीवर एवं अत्यधिक कचरा(कूड़ा–करकट) आदि के कारण भी प्लेग फैलता है।

११.**मलेरिया, फिलेरिया, डेंगूः–** ऐसे क्षेत्रों में जहाँ मच्छर अधिक पाए जाते हैं वहाँ रोगवाहक परजीवियों के अक्षुण्ण प्रजनन के कारण यह रोग फैलते है।

१२.**अनुकरणीयताः–** निद्र भंग होना तथा अन्चय मानसिक विकार निवासीय सुविधाओं के आभाव के कारण होते हैं।

१३.अच्छे शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य के निर्माण में निवास अवस्था की अहम भूमिका है तथा इसीलिए अविकसिकत एवं अस्वच्छ बस्तियों में विकसित एवं स्वच्छ बस्तियों की अपेक्षा लोग अधिकतर रोग के शिकार होते हैं।

१४.**अपशिष्ट का स्वास्थ्य पर दुष्प्रभावः–** मानवीय अपशिष्ट एवं घरेलू अस्पताल तथा औद्योगिक अपशिष्ट का उचित निपटान न होने के कारण इससे मृदा, पानी, वायु, खाद्य पदार्थ अत्यधिक प्रदूषित हो रहे हैं तथा इससे तपेदिक, डिसेंटरी, हैजा, हेपेटाइटिस, कैन्सर, श्वसन रोग तथा रक्त विकर इत्यादि रोग फैल रहे हैं, जिनसे न केवल समाज अपितु सामार्थिक उन्नति पर भी दुष्प्रभाव पड़ रहा है।

मानव का शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक स्वास्थ्य उसके पार्यवरण से जुड़ा हुआ है। इस को प्रभावित करने वाले तत्वों के परिणाम स्वरूप कई सुव्यवस्थित एवं स्वास्थ्य संबंधी संकट उत्पन्न होते हैं। स्वास्थ्य संबंधी कई दुंर्गम समस्याओं के पीछे मानव का ही हाथ है तथा वहीं उन्हें नियंत्रित कर सकता है, जिससे कि सम्पूर्ण प्राणि जगत का स्वास्थ्य बना रहे।

अध्याय–०६
अनुवांशिक अभियांत्रिकी और पर्यावरण

६.१ चिकित्सा के क्षेत्र में अनुवांशिक अभियांत्रिकी

मनुष्यों को होने वाले अधिकांश रोग या तो जीवाणु जैसे सूक्ष्मजीवों द्वारा फैलाए गए संक्रामक रोग (तपेदिक, कुष्ट रोग, हैजा, मियादी बुखार), या विषाणुओं (पोलियो, फ्लू, खसरा, एड्स) और अन्य परोपजीवियों द्वारा फैलाए जाते हैं। इसके अतिरिक्त मनुष्य में आनुवंशिक दोषों के कारण कुछ बीमारियां होती हैं। रोगाणुओं द्वारा पैदा होने वाली बीमारियों पर प्रतिजैविक पदार्थों की सहायता से रसायन चिकित्सा या रोग निवारक टीकों द्वारा काबू पाया जाता है।

६.१.१ संक्रामक रोगः–

पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकियाँ संक्रामक रोगों के सभी पक्षों अर्थात निदान, रोकथाम और उपचार का साधन हैं। प्रभावी उपचार आरंभ करने से पहले संक्रामक रोग का तुरंत सही–सही निदान आवश्यक है। मानक सूक्ष्मदर्शी विधियों की सहायता से रोग निदान की पारम्परिक विधियों द्वारा रोग का पता लगाने की अपनी सीमाएं हैं, उनकी संवेदनशीलता सीमित है। इसके अतिरिक्त इन विधियों से संवर्धन तैयार करने और जीवों के संक्रमण तथा औषधि के प्रति उनकी संवेदनशीलता एवं रोग प्रतिरोधिता के मूल्यांकन में कई सप्ताह लग जाते हैं। पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिकियों से कम समय में तथा अधिक विश्वसनीयता के साथ इन लक्षणों का पता लगाया जा सकता है। हाल ही में विकसित पॉलिमरेज श्रृंखला अभिक्रिया (PCR) प्रौद्योगिकी के विकास से रोगनिदान प्रक्रियाओं की संवेदनशीलता और परिशुद्धता में पूर्णतः क्रांति आ गई है। इसके साथ–साथ संवेदनशील और विश्वसनीय रोगनिदान के आसान तरीके Dipsticks भी विकसित किए जा रहे हैं जिनमें एक छड़ी डुबाकर रंगों की प्रतिक्रिया से रोगनिदान संभव है। यह प्रौद्योगिकी लगभग सभी जीवाणु, विषाणु एवं परोपजीवी संक्रमणों के लिए उपयोग में लाई जा सकती है।

विषाणु मूलक रोगों की रोकथाम में टीकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज विश्व से चेचक का सफाया हो गया है और पीलियो रोग लगभग समाप्त होने वाला है। लेकिन अभी भी विषाणुओं और जीवाणुओं से पैदा होने वाले ऐसे अनेक रोग हैं जिनके लिए पारम्परिक टीके पूरी तरह कारगर सिद्ध नहीं हुए हैं। एड्स जैसी बीमारियों के कारण समस्या और गंभीर हो गई है जिनके लिए कोई पारम्परिक टीका उपलब्ध नहीं है और न कोई ऐसा टीका तैयार करना संभव प्रतीत होता है। ऐसे मामलों में पुनर्योजी डी.एन.ए. पर आधारित दूसरी और तीसरी पीढ़ी के टीकों से काफी आशा है।

पुनर्योजी डी.एन.ए. प्रौद्योगिक और आनुवंशिक अभियांत्रिकी के साथ–साथ संकरण प्रौद्योगिकी का भी रोग नियंत्रण में काफी योगदान है। संकरण प्रौद्योगिकी में चूहे की मज्जार्बुद कोशिका (Myeloma) को प्रतिपिंड (Antibody) उत्पन्न करने वाली रक्त कोशिका से जोड़ा जाता है और संयोजित कोशिका को छांटकर प्रतिपिंड की वांछित एकल प्रजाति प्राप्त करने के लिए बढ़ने दिया जाता है। ऐसी अत्यधिक विशिष्टता वाले प्रतिपिंड़ों में उपचार की आश्चर्यजनक क्षमता होती है। इसके अतिरिक्त, एकल क्लोनीकरण विधि द्वारा तैयार किए गए प्रतिपिंड शरीर के विशिष्ट भाग में

औषधी पहुंचाने, विशेषकर अर्बुद कोशिकाओं या संक्रामक रोगाणुओं को समाप्त करने के लिए चमत्कारी 'बुलेट' का काम कर सकते हैं। अधिक व्यापक उपयोग के लिए मानव शरीर के अनुकूल एकल क्लोनीकरण विधि द्वारा तैयार किए गए तथा वांछित उत्प्रेरक क्रियाएं करने वाले प्रतिपिंड (Abzymes) भी पैदा किए जा रहे हैं।

६.२ पौधें के बेहतर विकास में आनुवंशिक अभियांत्रिकी के विभिन्न उपयोग

विश्वभर के कृषि उद्योग में कच्चा माल, कृषि रसायन और उत्पादनों में एक बेहतरीन संकलन की जरूरत महसूस की जा रही हैं साथ ही कम लागत में पौध उत्पादन को बढ़ाना और पर्यावरण के हित में रसायनों का कम से कम प्रयोग करना भी जरूरी है। विश्वभर में ऐसे पौधों की मांग बढ़ रही है जिनमें प्रत्याबल, सूखा, तपन, अम्ल लवण आदि से मुकाबला करने की प्रतिरोध-शक्ति हो। जैव प्रौद्योगिकी और आनुवंशिक अभियांत्रिकी की सहायता से इन सभी समस्याओं से निबटने के उपाय पाए जा सकते हैं।

६.२.१ जीवाणु-कीटाणु प्रतिरोधः-

जीवाणुओं और कीटाणुओं के कारण विश्व भर में कृषि उद्योग को करोड़ों का नुकसान उठाना पड़ता है, क्योंकि इनके संक्रमण को नियंत्रित करने के परिपूर्ण साधन उपलब्ध नहीं है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में इन पर नियंत्रण पाने के लिए जो रासायनिक तरीके अपनाए जाते हैं, वे पर्यावरण को दूषित करते हैं। आनुवंशिक अभियांत्रिकी के प्रयोग से निर्मित ट्रान्सजेनिक पौधे इस समस्या के निवारण के लिए उचित समाधान उपस्थित करते हैं, क्योंकि ये किसान और पर्यावरण दोनों के हितों के लिए काम करते हैं।

१९८७-८८ में कीटाणु-प्रतिरोध सम्बन्धी प्रथम सफल प्रयोग तम्बाकू और टमाटर पर किए गए। इन प्रयोगों में बैसिलस थुरिन्जिएन्सिस (Bacillus thuringiensis subsp. Kurstaki (Btk) से उपलब्ध lepidopteran विशिष्ट कीटाणु विष प्राकृत जीन का उपयोग किया गया। १९८७-८८ में टमाटर के पौधों पर किए गए परीक्षण ने यह दर्शाया है कि ट्रान्सजेनिक टमाटर के पौधों पर क्षति पहुंचाने वाले कीड़ों के आक्रमण में काफी कमी आई है। ट्रान्सजेनिक आलू में B- thuringiensis subsp. tencrionis से एक सांश्लेषित जीन की अभिव्यक्ति से Colorado Potato Beetle (CPB) गुबरैला के लिए प्रतिरोध शक्ति पैदा की गई है। ट्रान्सजेनिक कपास में सांश्लेषिक ठजङ्ग जीनह की अभिव्यक्ति से कपास-कीट के प्रति उच्च्य स्तर की प्रतिरोध शक्ति पायी गई है।

६.२.२ विषाणु संक्रमण प्रतिरोधः-

आनुवंशिक अभियांत्रिकी की मदद से पौधों में विषाणु प्रतिरोध क्षमता ऐसे जीन के प्रयोग से उत्पन्न की गई है जो इन संक्रमण विषाणुओं से ही प्राप्त हुए हैं, इसे Pathogen derved Resistance (PDR) कहा गया है। टोबैको मोजेक वायरस से कोट प्रोटीन जीन निकालकर तम्बाकू में अंतरित किया गया, जिससे उसमें TMVC के प्रतिरोध की क्षमता बढ़ गई है। इस प्रतिरोध को Coat Protein Mediated Resistance (CP-MR) कहा जाता है। तम्बाकू की तरह CP-MR. टमाटर पपीता, तरबूज, चावल, आलू आदि के ट्रान्सजेनिक पौधों में भी प्रभावी रूप में पाया गया है। मनीला स्थित अंतर्राष्ट्रीय चावल अनुसंधान संस्थान द्वारा विकसित विषाणु प्रतिरोधी किस्मों के इस्तेमाल से फिलीपिन्स में चावल की दुगनी से तीन गुनी पैदावार हासिल की गई है।

६.२.३ पर्यावरणीय व्यतिक्रम के विरुद्ध प्रतिरोधः–

गर्मी, सर्दी, लवण, भारी धातुओं, फाइटोहॉर्मोन और नाइट्रोजन जैसे पर्यावरणीय व्यक्तिक्रमों के विरुद्ध प्रतिरोध क्षमता विकसित करने में सहायक अनेक जीन आनुवंशिक अभियांत्रिकी के प्रयोग से पहचान लिए गए हैं प्रोलिन और बिटेन्स जैसे मैटोबोलाइट्स के बार में भी अध्ययन किया जा रहा है, इनका प्रयोग दबाव प्रतिरोध के लिए किया जा रहा है। अरेबिडॉप्सिस से प्राप्त एक जीन तम्बाकू में Glycerol-Phosphate acyl Transferase एन्जाइम के लिए अंतरित किया गया और परिणाम स्वरूप तम्बाकू में शीत–प्रतिरोध क्षमता विकसित की गई। शर्करा मूल के पोलिओल्स (मैनिटोल, सौर्बिटोल, आदि) समूह के संश्लेषण द्वारा कई पौधों से सूखे का दबाव झेलने की क्षमता बढ़ाई गई। साथ ही, यह भी देखा गया कि जिन पौधों में पोलिओल्स का स्तर ऊँचा होता है, उनमें सूखे को सहने की क्षमता अपेक्षाकृत अधिक होती है।

६.३ खाद्य प्रसंस्करण (Food Processing) में आनुवांशिक अभियांत्रिकी

आनुवांशिक अभियांत्रिकी के प्रयोग से FLAVR-SAVR टमाटर विकसित किए गए हैं जाS Polygalacturonase (PG) के विरुद्ध संवेदन प्रतिरोधी RNA प्रकट करते हैं। PG पकते हुए फल की कोशिका भित्ति में Pectin पर हमला करता है और इस तरह फल की परत नरम कर देता है। देर से पकने वाले टमाटर भी पैदा किए जाते हैं, जिनक लिए एथिलीन का उत्पादन करने वाले एन्जाइमों के विरुद्ध Antisese RNA जैसS ACC Synthase इस्तेमाल किए गए हैं अथवा ACC Deaminase के लिए उस जीन का इस्तेमाल किया जाता है जो 1-animocyclopropane-I carboxylic नाइट्रोजन acid (ACC) को विकृत कर देता है। यह ACC, Ethylene के निर्माण से ठीक पहले की स्थिति है। इस प्रकार टमाटर के आवरण की आयु बढ़ जाती है। ऐसे टमाटर पौधे पर भी अधिक समय तक टिक सकते हैं जिससे सर्करा और अम्ल निर्माण की अवधि बढ़ जाती है और परिष्कृत टमाटर प्राप्त होते हैं यूरोप और अमेरिका में वाणिज्यिक स्तर पर इनका उत्पादन किया जाता है। दक्षिण अमेरिका में ऐसे पेड़ों पर आम उगाए जाते हैं जिनमें आनुवांशिक अभियांत्रिकी से ऐसे जीन अंतरित किए गए हैं जो एथिलीन उत्पादन और फलों के पकने की गति धीमी कर देते हैं। फलों का देरी से पकना दूरदूर के बाजारों में आम भेजने में सहायक होता है। जीवाणु के ADP Glucose Pyrophosphorylase जीन को इस्तेमाल करके आलू में स्टार्च की मात्रा २०–४० प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है। गेहूं के ट्रान्सजेनिक पौधे भी विकसित किए गए हैं। इन ट्रान्सजेनिक पौधों में शकनाशी PPT (व्यावसायिक नाम बैस्टा–२० प्रतिशत PPT) प्रतिरोधी जीन विकसित किया गया है, जिससे गेहू के ट्रान्सजेनिक पौधों शकनाशी PPT में प्रतिरोध क्षमता पैदा हो गई है।

६.४ पुष्पकृषि में आनुवांशिक अभियांत्रिकी

आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा पुष्पकृषि में भी क्रांति आ गई है, फूलों के साथ भी कई प्रयोग किए जा रहे हैं, जिनके परिणामस्वरूप फूलों के साथ भी कई प्रयोग किए जा रहे हैं, जिनके परिणाम–स्वरूप फूलों की बेहतर, खुशबूदार, और रंगबिरंगी प्रजातियां उत्पन्न की जा रहा है। नीदरलैंड को विश्व में पुष्पकृषि का सबसे बड़ा केंद्र माना जाता है। क्योंकि विश्वभर में निर्यात किए जाने वाले सजावटी पौधों और फूलों का आधे से ज्यादा हिस्सा नीदरलैंड से आता है। विश्वभर में, खास तौर पर नीदरलैंड में, आनुवांशिक अभियांत्रिकी के सहारे पुष्पकृषि में कई प्रयोग किए जा रहे

हैं, जैसे प्राकृतिक तौर पर एक नीला गुलाब उत्पन्न कर पाना असंभव कार्य रहा है। किन्तु इस असंभव कार्य को आनुवांशिक अभियांत्रिकी की मदद से, संभव किया जा रहा है। इसके लिए पेटुनिया से नीला रंग प्रदान करने वाला जीन निकालकर, गुलाब के पौधे में अंतरित कर नीले गुलाब का निर्माण किया जा रहा है। सारे विश्व में पुष्पकृषि में इस तरह के सैकड़ों प्रयोग किए जा रहे हैं, जिनसे पुष्पकृषि को वाणिज्यिक तौर पर अधिकतम सफलता प्राप्त हो सकती है।

६.५ आनुवंशिक अभियांत्रिकी द्वारा दूषित मृदा का उपचार

पिछली कुछ सदियों से खनन, निर्माण और नगरीय गतिविधियों के कारण विस्तृत रूप से भूमि दूषित हुई है। गत कुछ वर्षों से भूमि के उपचार (Remediation) के लिए पौधों का उपयोग विभिन्न रूप से किया जा रहा है और अब आनुवंशिक अभियांत्रिकी की सहायता से ऐसे ट्रान्सजेनिक पौधों का निर्माण किया जा रहा है, जो विशिष्ट रूप से दूषित मृदा का उपचार करने में सक्षम हो। परम्परागत फसलों में अत्यधिक संचय की प्रवृत्ति निर्माण करने की कोशिशें जारी हैं ये प्रयोग ब्रैसिका (Brassica) जाति के पौधों पर किए जा रहे हैं, जिनकी जड़ों में भारी धातुओं के संचयन की क्षमता पाई गई है। पाइसम सेटिवम की एक उत्परिवर्ती जाति तैयार की गई है जो Pisum की जंगली जाति के मुकाबले १०-१०० गुना ज्यादा लोहे का संचय करती है। इसी तरह लौहक के संचय के लिए उत्परिवर्ती अरेबिडॉप्सिस भी बनाए गए हैं। ट्रान्सजेनिक अरेबिटाप्सिस पारे की भारी मात्रा में बर्दाश्त करने की भी क्षमता रखता है। इस तरह पादप उपचार विधि से दूषित मृदा से भारी धातुओं को निकालकर मृदा का उपचार किया जा सकता है।

६.५.१ पौधों द्वारा उपचारः-

पौधों द्वारा उपचार की इस नई प्रौद्यौगिकी मे प्रदूषित भूमि से भारी धातुयें निकालनें के लिये पौधों का उपयोग किया जाता है। पौधे मिट्टी से भारी धातुयें खींच लेते हैं। कुछ अध्ययनों से पता चला है कि जड़ें मिट्टी मे कार्बनिक प्रदूषकों की जैविक अपघटन प्रक्रिया को तेज कर देती हैं। पौधों की जड़ें प्रदूषित मिट्टी से आसानी से चली जाती है। उपचार की यह एक सस्ती विधि है।

पानी मे पाये जाने वाले पौधें जब गुणता सुधार मे विशेष रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह पौधे अपने ऊतकों मे अपने आस-पास के पानी की तुलना मे कहीं अधिक मात्रा मे धातु संचित कर सकते हैं। पानी मे भारी धातुओं की मात्रा के मॉनिटरिंग और जल प्रदूषण निवारण के लिये ऐसे अनेक प्रकार के पौधों का बड़े पैमानें पर उपयोग किया जा रहा है।

६.५.२ जैविक संसाधन (Bioprocess):-

सूक्ष्म जीवों द्वारा कोयले का संसाधन जैव प्रौद्योगिकी का अत्यंत आकर्षक विषय है जिसमें मुख्यतः दो बातों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। १. गंधक, नाइटोजन और सूक्ष्म धातुओं जैसे अवांछनीय प्रदूषकों की अलग करनें के लिये कोयले का परिष्करण (Beneficiation) २. कोयले का रूपांतरण (सूक्ष्मजीवों द्वारा कोयले का द्रवीकरण (Liquefaction), सूक्ष्मजीवों द्वारा कोयले को घुलनशील रूप (Solublilization) मे परिवर्तित करना। कोयले से कार्बनिक और अकार्बनिक गंधक अलग करने के लिये सूक्ष्मजीवों का विशेष उपयोग किया जा रहा है। दहन प्रक्रिया (combustion) के समय कोयले से SO_2 गैस निकलती है जो वातावरण को अम्लीय बना देती है। इस प्रकार कोयले के विगंधकीकरण (Desulphurization) द्वारा तेजाबी बारिश के संकट को भी टाला जा सकता है। भूरे

कोयले (Lignitie और अल्पविटुमनी (Sub-bituminious) कोयले के विबहुलीकरण (Depolymerizing) के लिये सूक्ष्मजीवों के समूहों का उपयोग किया जा रहा है।

६.५.३ भू-संरक्षण (Soil Conservation):-

इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शियों की सहायता से किए गए अध्ययनों से मिट्टी की संरचना को सुदृढ़ बनाने और भू-क्षरण को कम या समाप्त करने के लिए सूक्ष्मजीवों की महत्वपूर्ण भूमिका के संकेत मिले हैं। सूक्ष्मजीवों की कोशिकाओं की आवेशित दीवारें मिट्टी के कणों की सतह के साथ क्रिया कर सकती हैं और अनेक प्रकार की शर्कराओं का गोंद इन गुणों को परस्पर जोड़ कर एकट्ठा कर देता है। बन्धनकारी श्रोतो के उत्पादन में वृद्धि के लिए भूसे पर उगाए गए जीवाणु, फफूंद और खमीर मिश्रित सूक्ष्मजीवों को मिट्टी पर फैला दिया जाता है। खेतों में इस्तेमाल करने के लिए मिट्टी के कणों को परस्पर जोड़ने वाले सूक्ष्मजीवों को छाना जा सकता है, उनका बड़े पैमाने पर संवर्धन संभव है या उनमें किसी उपयुक्त कार्यद्रव (Substrate) को प्रविष्ट कराया जा सकता है

६.६ मनचाही पादप सामग्री का उत्पादन

६.६.१ ऊतकों के संवर्धन (Tissue Cullture) द्वारा:-

ऊतकों के संवर्धन (Tissue Cullture) द्वारा पौधों के ऊतकों के संवर्धन (Tissue Cullture) द्वारा अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाया जा सकता है। अलैंगिक (Somaclonal) प्रजनन द्वारा पौधों की भिन्न नई प्रजातियों की उत्पादन, पौधों का चयन (Selection), संकर (Hybrid) किस्मों मे विशेष गुणों को पैदा करना आदि पादप ऊतक संवर्धन के कुछ प्रचलित उपयोग हैं। अक्सर ऐसा होता है कि अच्छी किस्म के बीज जिनके आनुवंशिक गुणों के बारे मे जानकारी होती है जिनमे अनुकूलन क्षमता (Adaptibility) और उत्पादकता अधिक हो। उन्नत किस्म के विभेदों (Strains) के विकास तथा संवर्धन तकनीकों द्वारा चुनिंदा जीनोटाइप के समान गुण वाले पौधों के प्रजनन द्वारा यह संभव है। ऊतक संवर्धन (चित्र क्र.१०) जैव प्रौद्योगिकी की ऐसी तकनीक है जिसकी सहायता से कम समय मे बड़ी संख्या मे मनचाहे पौधे पैदा किये जा सकते है।

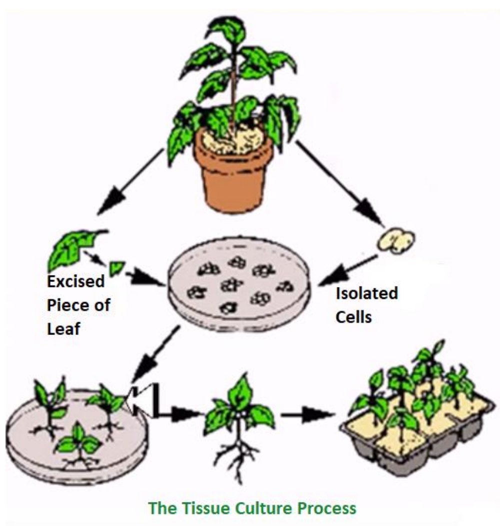

Fig. 10. Overview of the Tissue culture process

इस तकनीक का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इससे कम समय मे साल भर, रोगाणु मुक्त पौधे पैदा किये जा सकते है। ऊतक संवर्धन द्वारा ऐसे पौधे भी विकसिक किये जा सकते हैं जिनमे विभिन्न प्रकार के दबाबों को सहने की शक्ति होती है ताकि इन्हें प्रतिकूल परिस्थितियों वाली भूमि मे उगाया जा सके। ऊतक संवर्धन विधि द्वारा अनेक लवण प्रतिरोधी विकसित किये गये हैं जिन्हें खारी मिट्टी मे उगाया जा सकता है।

जैव विविधता को नष्ट होने से बचाने के लिये भी संकटग्रस्त या लुप्तप्राय जातियों का ऊतक संवर्धन द्वारा प्रजनन महत्वपूर्ण है। इससे प्राकृतिक वनस्पतियों पर मानवीय गतिविधियों के दबाव को कम किया जा सकता है और ऐसी जातियों का पुनर्जनन संभव हो सकेगा।

६.६.२ कवक मूल (Mycorrhizae):–

पौधों के कवक मूल फफूंद को प्रविष्ट कराकर किसी नए प्राकृतिक आवास मे लगाये गये पौधे के सामन्य स्वास्थ्य विकास के लिये आजकल एक अन्य जैव प्रौद्योगिक विधि का उपयोग किया जा रहा है। कवक मूल फफूंद के कारण पौधें के जीवित रहनें की संभावना बढ़ जाती है। और अधिक पोषक तत्व ग्रहण करनें तथा रोगाणुओं से बचाव के कारण वृद्धि अधिक होती। इसके अतिरिक्त, यह फफूंद पौधें को धातुओं की विषालुता (Taxicity) से भी बचाती है। पौध शालाओं और पादप गृहों (Glass House) मे कठोर काष्ठ और देवदार जाति के पौधों मे विशिष्ट फफूंद के संरोपण (Inoculation) के बाद इन पौधों को प्रतिकूल परिस्थितियों वाले क्षेत्रों मे लगाने पर देखा गया कि इन पौधों के जीवित रहनें की संभावनाओं और वृद्धि मे असाधारण सुधार हुआ है। ऊतक संवर्धन द्वारा उत्पन्न पौधों मे जड़ें निकलते या काष्ट के कठोर होते समय उपयुक्त सूक्ष्मजीवों के प्रायोगिक संक्रमण के कारण इन पौधों के बचने की अधिक संभावना होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त, जैव प्रौद्योगिकी से माईकोराइजी फफूंद के आनंवंशिक अभिलक्षणों की जानकारी प्राप्त करने मे भी सहायता मिलती है। बंजर भूमि मे वृक्षारोपण हेतु पौधों मे संरोपण के लिये यह फफूंद महत्वपूर्ण है।

६.६.३ नाइट्रोजन यौगिकीकरण (N_2-Fixation):–

जैव प्रौद्योगिकी की सहायता से पौधों को नाइटोजन (चित्र क्र. ११) उपलब्ध कराने मे सहायक राइजोमी जीवाणुओं के बिना फली वाले पौधे की जड़ो मे गाठों (Nodules) के निर्माण के लिये प्रेरित किया जा सकता है जिससे मिट्टी को उपजाऊ बनाए रखा जा सकता है। प्राकृतिक और कृत्रिम (Managed) प्राकृतिक आवासों (Habitat) के जीवाणुओं के आनुवंशिक परिवर्तन का अनेक उपजाऊ भूमि के प्रबंध पर काफी ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। इस दिशा मे नाइट्रोजन भूमि के प्रबंध पर काफी ज्यादा प्रभाव पड़ेगा। इस दिशा मे नाइट्रोजन स्थायीकरण सहजीवियों मे विशिष्ट जीन के गुणों मे संशोधन कर फलियों की उपज बढ़ानें के प्रयत्न किये गये है। क्रमशः डाईकार्बोक्सीलेट वाहक प्रोटीन (Dcta) तथा नाइटोजन यौगिकीकरण प्रक्रिया को उत्प्रेरित करनें वाले प्रोटीन (NIF A) के गुण वाले विभेद Bradyrhizobium japonicum और Rhizobioum meliloti से संबंधित परपोषियों (Host) मे १० प्रतिशत से भी अधिक जैवद्रव्य (Biomass) की वृद्धि हुई। इन दोनों परपोषियों और राइजोमी जीनों मे परिवर्तन के प्रयास जारी है ताकि गांठों के निर्माण और कार्य मे अधिकतम कुशलता प्राप्त की जा सके और ऐसे विभेदों का निर्माण संभव हो जो असामान्य मिट्टी में उगाए जा सकें। राइज़ोमी विभेदों के विकास, उनके आनुवांशिक लक्षणों की जानकारी और उपयुक्त समावेशन तकनीकों के विकास के लिए जैव प्रौद्योगिक साधनों का उपयोग किया जा रहा है।

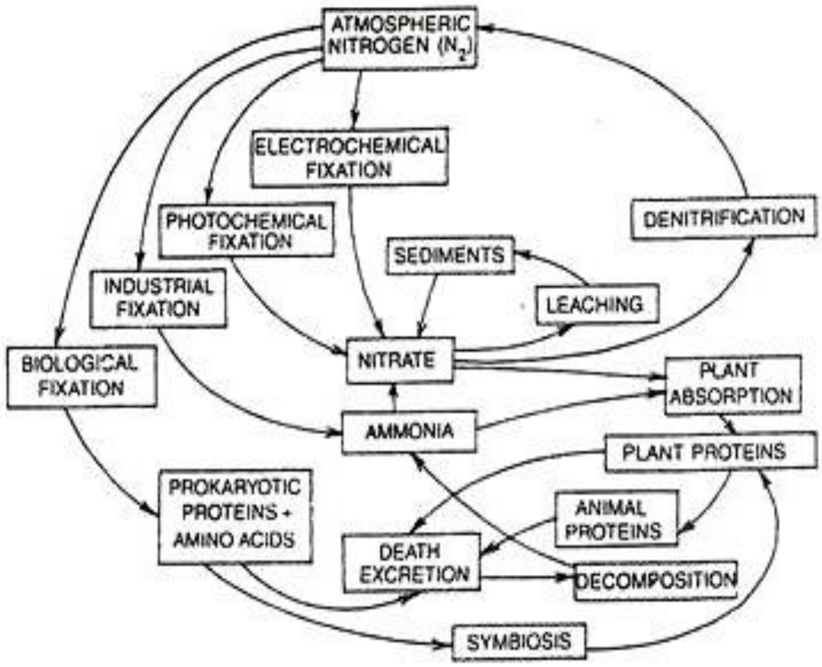

Fig.11- Nitrogen Cycle

बिना फली वाले ऐसे पौधे तैयार करने के उद्‌देश्य से एक सामान्य योजना तैयार करने के लिए जैव प्रौद्योगिकी के उपयोग का प्रयत्न किया जा रहा है ताकि पौधे उर्वरकों की अपनी आवश्यकता स्वयं पूरी कर सकें और पोषक तत्वों के अभाव वाली विपरीत परिस्थितियों में जीवित रह सकें। आवृतबीज पौधे (Angiosperm) सहायता से नाइट्रोजन यौगिकीकरण की क्षमता वाली गांठें बनाने के लिए जानी जाती हैं। भूमि के पुनरुद्धार और वृक्षारोपण के लिए ऐसे नाइट्रोजन स्थायी कारक सहजीवी पौधों के उपयोग से महंगे नाइट्रोजनी उर्वरकों के बिना अधिक उपज सुनिश्चित की जा सकती है। यह पौधे मिट्‌टी को भी सुधारते हैं और इनसे निकलने वाले फिनॉल और अन्य कार्बनिक यौगिक रोगाणुओं को भी नष्ट कर सकते हैं कैजुआरिनेसी (Casuarinanceac) जाति के गांठों वाले पौधे न केवल नाइट्रोजन की कमी वाली मिट्‌टी में उगाए जा सकते हैं वरन् भूमि को उपजाऊ बनाए रखने में भी सहायक हो सकते हैं मरुस्थल के विस्तार और भूमि के अनुपजाऊ होने की समस्या से ग्रस्त कुछ उष्णकटिबन्धीय और उपउष्णकटिबंधीय देशों में वृक्षारोपण के लिए ऐसे पौधे आवश्यक हैं चित्र.११।

६.६.३ जैव उर्बरक (Biofertilizers):–

सूक्ष्मजीवों द्वारा तैयार किए गए जैव उर्बरक जिन्हें भूमि को अधिक उपजाऊ बनाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है अनुपजाऊ भूमि को उपजाऊ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। जैव उर्बरक सस्ते होते हैं, उन्हें आसानी से तैयार किया जा सकता है, वे असरदार और पर्यावरण के भी अनुकूल होते है। जैव उर्वरकों का मुख्य कार्य मिट्‌टी में जैव पदार्थों को एकत्र करना होता है। जैव

पदार्थ पोषक तत्वों के भण्डार के रूप में कार्य करते हैं, मिट्टी की जलधारण क्षमता को बढ़ाते हैं, संरचना को स्थायी बनाते हैं और सुधार करते हैं। नाइट्रोजन स्थिर करने वाले असहजीवी (Asymbiotic) जीवाणु एजेटोबैक्टर और एजोस्पाइरिलियम और जीवी राइजोबियम में मिट्टी को फिर से उपजाऊ बनाने की क्षमता होती है जिनका जैव उर्वरकों के रूप में उपयोग किया जा सकता है। हरित–नील शैवाल जिसमें वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को पौधों के लिए उपलब्ध कराने की क्षमता होती है, ऊसर जमीन में उगाए जा सकते हैं जहां अन्य पौधे पनप नहीं सकते। इस प्रकार हरित–नील शैवाल ऊसर भूमि को उपजाऊ बनाने में मदद कर सकते हैं। नाइट्रोजन प्रदान करने वाले जैव ऊर्वरकों के अतिरिक्त कुछ सूक्ष्मजीव ऐसे भी होते हैं जिनमें फास्फेट को घुलनशील बनाने की क्षमता होती है। इन्हें मिट्टी से पौधों के लिए फास्फोरस की उपलब्धता में वृद्धि के लिए जैव उबैरकों के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। फास्फेट को घुलनशील बनाने वाले अनेक सूक्ष्मजीवों को पृथक कर परीक्षण किए गए जिनसे मिट्टी की उर्वरता बनाए रखने की इनकी क्षमता की पुष्टि हो गई।

६.६.४ पौधों से प्लास्टिक का उत्पादनः–

Polyhydroxybutyrate (PHB) एक ऐसा बहुलक (Polymer) है जो जीवाणु की कई प्रजातियों में प्राकृतिक भंडारण सामग्री एकत्र करता है। PHB का इस्तेमाल उद्योगों द्वारा ऐसे प्लास्टिक के निर्माण के लिए बार–बार काम आने वाले स्रोत के रूप में किया जाता है। जिसका सूक्ष्मजीवों द्वारा उपचार (Biodegradation) संभव है। PHB को जिन एन्जाइमों की आवश्यकता पड़ती है, वे हैंः 3-Ketothiolase, Acetoacetyl COA reductase, PHB synthase इनमें से पहला एन्जाइम सभी पौधों में पहले से ही मौजूद रहता है। वैज्ञानिकों ने दो अन्य एन्जाइमों को उद्घाटित करने वाले जीन Alcaligenes eutrophus और Arobidopsis thaliana से उद्घाटित करके पौधों में अंतरित किया है और यह पाया कि ट्रान्सजेनिक पौधे PHB का संश्लेषण करते हैं और प्लास्कि कोशिका द्रव्य (Cytoplasm). नाभिक तथा कोशिका के रिक्त स्थानों में छोटे–छोटे कणों के रूप में एकत्र होता है।

प्रकृति संरक्षण
खण्ड – तीन

प्रकृति मानव के प्रति सदैव एक माँ की तरह रही है। जब से मनुष्य का जन्म पृथ्वी पर हुआ है तब से वह अपनी जीविका चलाने के लिये प्रकृति पर ही निर्भर है। प्रकृति से प्राप्त होने वाली हर वस्तु मनुष्य के लिये उपयोगी तथा मनुष्य के लिये एक उपहार है।

बढ़ती हुई मानवीय जनसंख्या के कारण मनुष्य की आवश्यकतायें बढ़ती जा रही है जिसके कारण वह प्राकृतिक सम्पदाओं का अत्याधिक दोहन करने लगा है और कही एक समय ऐसा ना आ जायें जिससे हमारी भावी पीढी इन प्राकृतिक सम्पदाओं का उपयोग करना तो दूर इनको अपनी आँखों से देखने तक को ना पाये इसलिये जनसंख्या वृद्धि और प्राकृतिक सम्पदाओं के उपयोग के बीच में एक प्रकार का संतुलन बना कर रखना होगा।

कुछ विशिष्ट जातियों के पूर्ण विलोपन के कारण भी हमें संरक्षण की आवश्यकता महसूस हुयी है इसलिये अपने पौधों प्राणियों और जीवाणु सम्पत्ति (Microbial Wealth) के संरक्षण के लिये हमारी रूचि होनी चाहिये।

अतः संरक्षण (Conservation) को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है ‘‘जीवमण्डल की मनुष्य जाति को मिलाकर सभी जीवों की भलाई के लिये प्रबन्धन जिससे कि यह भविष्य पीढियों की आवश्यकता और इच्छा की विभव को प्रबंधित करके’’।

भारत में ६ मार्च १९८० को भारत ने विश्व संरक्षण युक्ति (World Conservation Strategy) का प्रमोचन किया तथा पूजा पर जोर दिया। जिसमें हमारी पुरानी पद्धति से पौधों और प्राणियों की देखभाल अपने स्वयं के शब्दों में ‘‘संरक्षण में रूचि एक भावुकता नहीं है परन्तु हमारे महात्माओं द्वारा जाने गये सच का पुनः अविष्कार है। भारतीय परम्परा हमें यह सिखाती है कि जीवन, मनुष्य, प्राणी और पादप के सभी रूप एक दूसरे से एक तरह से जुडे है जिसमें किसी एक का विक्षोभ अन्य में असंतुलन उत्पन्न करता है।

अध्याय–०१
प्रकृति संरक्षण की विश्वव्यापी आवश्यकता

पर्यावरण केवल विकासशील राष्ट्रों की ही नही, समूचे विश्व की समस्या है, क्योंकि संपूर्ण वसुधा एक है और उस पर रहने वाले सारे जीवधारी पर्यावरण मे हुये किसी भी बदलाव से अवश्य ही प्रभावित होते हैं। कहने को तो हमारे चारो आरे रहने वाले मनुष्य, जीव, जन्तु, पेड़–पौधों तथा वायुमण्डल को मिलाकर पर्यावरण बनता है लेकिन वास्तव मे पर्यावरण बहुत व्यापक है। पर्यावरण का तात्पर्य उस समूची भौतिक, रासायनिक एवं जैविक व्यवस्था से है जिसमे जीवधारी रहते हैं। बढ़ते पनपते हैं और अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का विकास करते हैं। प्रकृति पर्यावरण से सभी संघटकों का अनुपात ठीक बनाये रखने की सदैव चेष्ठा करती है। लेकिन आज का मानव प्रकृति की व्यवस्था को स्वीकार न कर उसमे अपने अनुकूल व्यवस्था का विकास करने मे सदैव सतत् रूप से संलग्न रहता है। मसलन प्रकृति के साथ मनुष्य द्वारा की गयी दखलंदाजी से निर्मित पर्यावरण की बिगड़ती दशा आज समूल विश्व के लिये चिंता एवं चर्चा का विषय बना है।

आज विकासशील राष्ट्र होड़ सी लगाकर अधिकाधिक औद्योगीकरण करते जा रहे हैं जिसके कारण ऊर्जा के प्राकृतिक भण्डारों का खुलकर अपव्यय हो रहा है। कोयला बनाने के लिये तथा खेती और बस्तियों का विस्तार करने के लिये वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है। बुलडोजरों और अन्य मशीनों के प्रयोग से अनेक समुदायों का नाश हुआ है। उससे जंगलों, घांस के मैदानों अथवा मरूस्थलों और भूमि की ऊपरी परत मे ही पूर्ण परिवर्तन नही हुआ है वरन् पास के झोंकों का वातावरण बदल गया है।

प्राकृतिक वनस्पतियों के आवरण के रहने से कभी सूखा, कभी बाढ़ की स्थिति आ जाती है। भूमि आसानी से पानी नही सोख पाती जिस वर्षा का अधिकांश जल सीधे नदियों मे चला जाता है। जिससे भूमिगत जल मे सतत् कमी आ रही है। कीटनाशी रसायनों के व्यापक प्रयोग से भी भयानक गड़बड़ियां हो रही है। इन विषाक्त कीटनाशियों से लिप्त कीटों को खानें वाले पक्षी व अन्य जीव मर जाते हैं। इतना ही नही इसके साथ–साथ इन कीटनाशी रसायनों, औद्योगिक अपशिष्ट जनित रसायनों की कुछ मात्रा कृषि उत्पाद मे भी समाहित हो जाती है जो कि मनुष्य द्वारा भोज्य पदार्थ के रूप मे ग्रहण किये जाने पर उसके शरीर मे पहुंचता है। मानव शरीर मे कार्यकीय परिवर्तन करती है।

आज उद्योग प्रत्येक राष्ट्र की समृध्दि के मापदण्ड बन गये हैं औद्योगिक विकास का मूलाधार ऊर्जा है। तथा ऊर्जा की मूलाधार प्रकृति है। प्राकृतिक संपदा का ऐसा खुलकर अपव्यय किया जाता है। और निरंतर किया जा रहा है। जिसकी भरपाई करता संभव नही है। हमने अपने तात्कालिक लाभ के लिये दूरगामी दुष्प्रभावों को ताक पर रख दिया है और प्रकृति को मनमाने ढंग से छिन्न–भिन्न कर दिया है। प्रो. गुन्नार मर्डल ठीक ही कहते हैं कि ‘‘पश्चिमी राष्ट्र अपव्यय, प्रदूषण और धरती के संसाधनों के अंधाधुंध दोहन की भयानक कीमत पर ही अपने जीवन–यापन का स्तर ऊंचा बनाए रख पा रहे हैं।’’

ऊर्जा उद्योगों ने वायु, जल और हमारे रोजमर्रा के जीवन मे जहर घोल दिया है। वातावरण मे कार्बनडाइआक्साइड की मात्रा बढ़ रही है। फॉसिल ईंधनों के जलने से इस गैस की बड़ी मात्रा वातावरण मे विमुक्त होती है। सामान्य स्थितियों मे पौधें कार्बन डाईआक्साइड को ग्रहण कर प्राण वायु मुक्त करते हैं। लेकिन वन विनाश एवं शहरीकरण के कारण इस प्राकृतिक व्यवस्था मे बाधा उत्पन्न हो गयी है। जिसके कारण वायुमण्डल मे कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा दिनो-दिन बढ़ती जा रही है। वायुमण्डल मे कार्बन डाईआक्साइड की मात्रा बढ़ने से उसका ताप धीरे-धीरे बढ़ता जाता है फलस्वरूप शीतोष्ण क्षेत्र रेगिस्तान हो सकते है। तथा ध्रुवों की बर्फ पिघल सकती है और जल प्लावन की संभावना वैज्ञानिकों द्वारा अनुमानित है।

आधुनिकीकरण के जाल से वातावरण को अनेक प्रकार की अत्यंन्त जहरीली गैसे यथा, क्लोरो-फ्लोरो कार्बन डाईआक्साइड इत्यादि वायुमण्डल मे पहुंच रही है। हमारे वातावरण की कुछ ऊंचाई पर ओजोन की एक परत है जो सूर्य की पराबैंगनी किरणों से हमे बचाती है। ये घातक ओजोन परत मे पहुंचकर रासायनिक प्रक्रिया से उसका क्षय करती हैं। फलस्वरूप ओजोन परत पर कई जगह छेंद होने की बात वैज्ञानिकों की चिंता का विषय बनी हुई है। यही नही यदि इन गैसों को वातावरण मे मुक्त होंने की दर लगातार बढ़ती रही तो वह दिन दूर नही जब वायुमण्डल मे अभूतपूर्व परिवर्तन होगा, जीव-जन्तु कैंसर जैसी बीमारी से ग्रसित हो उसके ग्राह्य बन जायेगें।

अध्याय–०२
प्रकृति संरक्षण की विश्व संहिता

विश्व के विशेषज्ञों ने चेतावनी दी है कि यदि प्रदूषण इसी तरह से बढ़ने दिया गया तो एक अवस्था ऐसी आएगी जब ताजी हवा और शुद्ध पानी मिलना मुश्किल हो जाएगा। वातावरण मे विषैले पदार्थ जमा होते जायेंगे तो नये–नये रोग पनपते जाएंगे और मानव जाति खतरनाक मोड़ पर पहुंच जायेगी।

चेतावनियों का असर विश्व स्तर पर प्रतिबिंबित नजर आया। इस हेतु अनेक देशों ने पृथक–पृथक एवं विश्व स्तर पर भी कई कार्यक्रमों, संस्थाओं की शुरूआत हुई। १९४८ मे फ्रांस के फोतेनब्ला नगर मे संयुक्त राष्ट्रसंघ का विश्व स्वास्थ्य संघठन के सहयोग से पेरिस मे आयोजित जीव मण्डल कांन्फ्रेंस से प्रारंभ हुआ। १९७२ मे स्टाकहोम मे कान्फ्रेंस हुई जिससे अंन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण संरक्षण हेतु प्रयास किय जाने पर विशेष गति मिली। विश्व के समस्त कोने–कोनें मे राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सेमिनार, संगोष्ठियों एवं कार्यशाला आयोजित होनी लगी तथा लोग पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके सुधारों हेतु चिन्ता करने लगें।

विश्व के सारे राष्ट्रों ने पर्यावरण संबंधी कानून बनाये। १९६९–७० मे अमेरिका, १९७० मे हालैण्ड, १९७१ मे फ्रांस एवं १९८० मे भारत सरकार इत्यादि ने अपनी–अपनी राष्ट्रीय पर्यावरण नीतियां बनाई तथा उनके अनुपालन हेतु एजेंसियों, संस्थाओं एवं विभागों की स्थापना की।

इतना ही नही संयुक्त राष्ट्र संघ, पगवाश आंदोजन, विश्व वन्य जीव संरक्षण कोष, अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संपदा संघ तथा युनेस्को द्वारा आयोजित 'मैन एण्ड बायोस्फियर' परियोजनाएं पर्यावरण सुरक्षा के लिये स्थायी हल ढूंढने मे क्रियाशील हैं।

अध्याय-०३
वन्यजीवन संरक्षण और सरंक्षण कानून

सामान्य मनुश्य के लिए वन्यजीवन (Wild life) शब्द का अर्थ अपने प्राकृतिक आवासों, जैसेः- वन, मरूस्थल, घासभूमि इत्यादि में रहने वाले वन्य व घरेलू प्राणी से है किन्तु परिस्थितिकी ज्ञानी वन्यजीवन में दोनों, प्राकृतिक रूप से पाये जाने वाले प्राणियों (प्राणिजात) और साथ ही पौधों (वनस्पतिजात) की इसके अन्तर्गत शामिल करता है।

वन्य जीवों में पेड़ पौधे, जन्तु, पक्षी आदि वे सभी जीव सम्मिलित किये जाते हैं जो अपने प्राकृतिक आवास में रहते हैं। इन जीवों में पालतू तथा घरेलू पशु पक्षी एवं कृषि किये जाने वाले पादप सम्मिलित नहीं किये जाते हैं। वन, जीवों का प्रकृतिक आवास है। मानव ने जीवों के प्राकृतिक आवास को अपनी स्वार्थपरता के कारण संकुचित कर दिया जिसके कारण पर्यावरण का आकर्षण हुआ। कृषि भवन निर्माण, सड़क-निर्माण, बांध, ईधन तथा खनिजों के खनन आदि से वनों का क्षेत्र निरन्तर कम होता चला गया। जीवधारियों को उनके प्राकृतिक आवास से हाथ धोना पड़ा। जीवधारी एक दूसरे के पूरक हैं, एक दूसरे पर निर्भर करते हैं मनुष्य यदि प्राकृतिक पारितंत्र में अपना हस्तक्षेप न करे तो परितंत्र व्यवस्थित रूप से संतुलित रहता है। मनुष्य के हस्तक्षेप से असन्तुलन पैदा हो जाता है। असंतुलन पैदा होने का कारण प्राकृतिक आवास स्थलों में मानवीय हस्तक्षेप है।

मनुष्य प्रकृति का सबसे बड़ा संहारक एवं सबसे बड़ा संरक्षक है। अभी तक उसने अपना संहारकीय कार्य ही प्रस्तुत किया है। आगे के युग में उसकी गणना संरक्षक के रूप में की जाने की संभावनाएं हैं। वन्य जीवों के लिए अभी तक उसने अपनी संहारक वृत्ति का परिचयन दिया है। प्रारम्भ में मनुष्य तलवार, भाले आदि शस्त्रों का प्रयोग करके जीवों की हत्या किया करता था तथा अपनी शक्ति की परिचय दिया करता था। परन्तु अब आग्नेय अस्त्रों का आविष्कार करके उसने जीवों की हत्या बड़ी निर्ममता से करना शुरू कर दी है। साथ ही जब जंगल-वन समाप्त होते गए तो जंगली जीवों का आश्रय स्थल समाप्त हुआ और उनके दुश्मन जीव उन पर हमला बोलने लगे। प्रकृति का विधान ही है **'जीवों जीवस्य भोजनम्'** अब स्थिति ऐसी आ गयी है कि मनुष्य अपना संरक्षणीय कार्य प्रारम्भ करे और इस कार्य को करने के लिये विश्व स्तर पर वन्य जीव संरक्षण योजनाएं चलाई जाने लगी है।

इस अध्याय में हम वन्य जीवों के वर्गीकरण, लुप्प प्राय जीवों, रेड डेटा बुक, वन्य जीवों का महत्व, वन्य जीव सुरक्षा नियम, वन्य जीव संगठनों के बारे में अध्ययन करेंगे।

वन्य जन्तु-

वन्य जीव संरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत सम्मिलित जन्तुओं का वर्गीकरण इन तीन वर्गों में किया गया है-

१. स्तनपायी- जो पशु अपने बच्चों को स्तन का दूध पिलाते है तथा बच्चों को जन्म देते हैं (अण्डे नहीं) वे इस वर्ग में आते हैं। इस वर्ग में सम्मिलित जन्तु हैं- शेर, बाघ, चीता, भेड़िया भालू,

बिल्ली, लोमड़ी हिरन, चिंकरा, चौसींगा, नीलगाय, जंगली चूहा, गीदड़, जरख, हाथी जंगली सूअर आदि।

२.पक्षी– वे जन्तु जिनके दो टांग तथा दो पंख होते हैं। जैसे मुर्गा, तिलोर, गोडाबन, सारस, बाज, उल्लू, काठफोड़वा, गोरैया, बटेर, हंस, बुलबुल गिद्ध, गौवा, चील, कोयल, मुर्गावी आदि।

३. सरीसृप– वे शीत रक्त जन्तु जिनकी त्वचा शल्की होती है तथा अण्डे देते हैं। जैसे– अजगर, सांप, छिपकली मगरमच्छ, केचुआ, गिरगिट, घड़ियाल गोह, केकड़ा आदि।

३.१ भारत का वन्य जीवन

भारत में जलवायु और प्राकृतिक दशाओं में व्यापक भिन्नता के कारण अनेक प्रकार के जीवन जन्तु पाए जाते है। लगभग ५०,००० किस्म के कीट, ४,००० किस्म के घोंघे, ६५०० अन्य अपृष्ठवंशी जीव, २००० किस्म की मछलियां, १४० किस्म के उभयचर, ४२० किस्म के सरीसृप, १२०० किस्म के पक्षी, ३४० किस्म के स्तनपायी पाए जाते हैं। इस प्रकार भारत में ६५००० विभिन्न किस्मों के जीव जन्तु पाये जाते हैं।

स्तनपायी जानवरों में हाथी, भारतीय भैंसा, नील–गाय, कृष्ण–मृग, बारहसींगा, मृग, घेडखुर (कच्छ के रन का जंगली गधा), एक सींग वाला विशाल गैंड़ा, कस्तूरी मृग, चित्तीदार मृग, लामिन, मूषक मृग, आदि जीव भारत भूमि की विशेषताएं हैं। भारतीय सिंह अपना विशेष स्थान रखते हैं। यह अफ्रीका के अलावा भारत में ही पाया जाता है। बाघ हमारा राष्ट्रीय पशु है। तेंदुआ, काला तेंदुआ, हिम–तेंदुआ तथा अन्य प्रकार की छोटी बिल्लियाँ भारत में पायी जाती है। अनेक प्रकार के बन्दर तथा लंगूर यहां पाए जाते हैं।

मोर भारत का राष्ट्रीय पक्षी है। यह सुन्दरता में अद्वितीय है। इसके अतिरिक्त तीतर, बत्तख, मुर्गियां, मैना, तोते, कबूतर, सारस, बकुले, आदि यहां पाये जाते हैं। नदियों तथा झीलों में घड़ियाल मगरमच्छ तथा छोटी–बड़ी विभिन्न प्रकार की मछलियां पाई जाती है। विशाल हिमालय में जंगली भेड़ और जंगली बकरी, पाण्डा तथा हिम तेंदुआ व पहाड़ी स्थनो पर पाये जाते हैं।

स्तनपायी जन्तुओं में हाथी का प्रमुख स्थान है। यह विषुवतीय उष्ण आर्द्र बनों का जीव है। असम, केरल तथा कर्नाटक के जंगलों में पाया जाता है। जंगली गधा केवल कच्छ के वन में पाया जाता है। एक सींग वाले गेंडे असम तथा पश्चिमी बंगाल के दलदली क्षेत्रों में रहते हैं।

३.२ लुप्तता की ओर वन्य जीव

भारत में बाघ, सोन चिड़िया, सुनहरी गरुड़, बत्तख, कश्मीरी बारहसिंगे, कस्तूरी मृग, जंगली भैंसे, राजहंस, घड़ियाल, सफेद शेर, बब्बर शेर, सफेद हाथी, सफेद कौवे, आदि वन्य जीवों की संख्या में इस कदर कमी आ गई है कि यदि इनके संहार पर प्रतिबन्ध न लगाया गया होता तो इनमें से कई की जो जातियाँ ही बिलुप्त हो जायेगीं। राष्ट्रीय वन नीति १९५२ में वन्य जीवों के संरक्षण के लिए प्रयास की बात कही गई, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय वन्य जीव बोर्ड का गठन किया गया। इस बोर्ड का विस्तार १९६२ में किया गया। इस बोर्ड की अनुशंसाओं के आधार पर शिकार पर रोक, पशु–पक्षियों के बने उत्पादों के निर्यात पर प्रतिबन्ध, राष्ट्रीय उपवन, अभयारण्य और प्राणी उद्यानों की घोषणाएं की गई। कुछ पौधों और प्राणियों की कई जातियाँ पहले ही विलुप्त हो चुके है, और कई विलोपन की कगार पर खड़े हुये है। भारत के वानस्पतिक सर्वेक्षण (Botanical survey of

India) ने देश के पादप सम्पदा (Plant resources) का तथा प्राणि सर्वेक्षण (जेड०एस० आई) (Zoological Survey of India) द्वारा किया जाता रहा है।

भारतीय पादपों की रेड डाटा बुक भाग-२ में लगभग २०० दुर्लभ और संकटापन्न जातियाँ पूरी है और छापी गई है (डी०ओ० ईएन वार्षिक रिपोर्ट, १९८६-८९)।

आई०यू०सी०एन० (IUCN) प्रकृति और प्राकृतिक सम्पदाओं के संरक्षण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संघ) (International Union for Conservation of Nature and Natural resources) की रेड डाटा बुक के अनुसार १००० प्राणियों से ज्यादा विलोपन के शिकार हो सकते है। इनमें से जो अधिक तत्काल खतरा झेल रहे है वे है राइनोंसिरस (Rhinoceros) की सभी जातियाँ, मुख्यतः भारतीय किस्म- रोयल बंगाल (Royal Bangal) और साइबेरियाई बाघ, मैक्सिकन ग्रिजली भालू (Mexican Grizzly bear), लाल भेडिया (Red Wolf), पर्वतीय गोरिल्ला (Mountain Gorillaaaa), अरेकियाई ऑरेवस (Arabian Oryx) और एशियाई शेर। भारत में लगभग ४५० पादप जातियाँ संकटापत्र (Endangred) पहचानी गई जो थ्रैटन्ड (Threatened) या दुर्लभ है।

भारत में वन्य जीवों के कम होने के प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं-

१. शौकिया शिकार करना।

२. कृषि के फैलाव, नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के कारण इनके प्राकृतिक आवासों का विनाश। पालतू पशुओं द्वारा अतिचारण जो क्षेत्र की मरूस्थल में बदल देते है।

३. नदियों का प्रदूषित होना।

४. मांस, खाल, हड्डी, हाथी-दांत, गेंडे के सीग की विदेशों में भारी मांग है। इनके अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मूल्य भी अति उच्च हैं। संरक्षित वनों में इनका शिकार चोरी छिपे किया जाता है। कई बार वनाधिकारी भी इसमें लिप्त पाये जाते हैं। इनके उदाहरण के रूप में हम वाघ के विभिन्न अंगों का अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य प्रस्तुत कर रहे हैं। खाल ७-१० लाख रुपये, हड्डी ७,७५० रू. प्रति किलोग्राम, अस्थिपंजर १.५५ लाख रुपये, सिर ५० हजार रुपये, एक जोड़ी आँख ५००० रुपये, एक बोतल खून १,७२५ रू. तथा बाघ की हड्डी की शराब ४५० रू., गेंड़े का सींग, हाथी दांत, कस्तूरी आदि का मूल्य अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अति उच्च कल्पनातीत है। ह्वेल, स्मूर, सील समुद्री ऊट विलाव, इसी श्रेणी के जीव हैं।

५. अत्यधिक चराई, दावानल (वन की अग्नि), यातायात, अवैध खनन इनमें ह्रास के प्रमुख कारण हैं।

६. वनों में कीटनाशी रसायनों का प्रयोग भी गौण कारण है।

७. निर्वनीकरण से पास के वनों में बाढ़ आना।

८. प्रायोगिक उपयोगिता के कारण कुछ जीव अल्पता में आ गये हैं। रीसस बन्दर प्रयोगशाला में जैव प्रयोगों के लिये तथा मृग-श्रृंग का उपयोग रेडियोधर्मी प्रदूषण मापन के लिये किया जाता है।

३.३ वन्य जीव संरक्षण

भारत में वनों के कुल क्षेत्रफल का ३ प्रतिशत क्षेत्रफल वन्य जीव संरक्षित क्षेत्र है। इस क्षेत्रफल को ४ प्रतिशत तक बढ़ाने की योजना है। इस कार्य की पूर्ति के लिए १९८३ में राष्ट्रीय वन्य जीव

संरक्षण क्रियान्वयन योजना का श्रीगणेश किया गया। वन्य जीव संरक्षण के लिए वन्य जीव संरक्षण निदेशालय तथा भारतीय वन्य जीव संस्थान देहरादून- ये मुख्य दो केन्द्रीय अभिकरण हैं। ये अभिकरण क्रियान्वयन योजना को निर्धारित एवं संचालित करने का कार्य करते है। योजनाओं की पूर्ति के लिए राज्यों, केन्द्र शासित प्रदेशों तथा गैर सरकारी अभिकरणों का सहयोग लिया जा रहा है। इस योजना के तहत निम्नलिखित कार्य किये जा रहे हैं-

१. राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों और संरक्षण के योग्य अन्य क्षेत्रों का सर्वेक्षण ।

२. वन्य जीव शरण स्थलों के लिए प्रबन्ध योजनाएं तेयार करना, राष्ट्रीय वन नीति की समीक्षा।

४. वन्य जीव संरक्षण अधिनियम की समीक्षा एवं आवश्यक संशोधन ।

५. संरक्षित प्रजनन एवं पुनर्वास कार्यक्रमों का निर्माण।

रेड डेटा बुकः-

अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधन संरक्षण संघ (इण्टरनेशनल यूनियन फोर नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज) ने अपने आधीन ''सरवाइबल सर्विस कमीशन' का गठन किया। इस संस्थान ने एक पुस्तक प्रकाशित की जिसका नाम 'रेड डेटा बुक' रखा। इस पुस्तक में क्रमशः लाल, सफेद, पीले और भूरे रंग के पृष्ट हैं। लाल रंग के पृष्ठों में लुप्त या लुप्त प्रायः प्रजातियों के नाम, सफेद पृष्ठों में ऐसी दुर्लभ प्रजातियों के नाम जिनको संख्या अत्यन्त कम है और केवल कुछ स्थानों पर ही जीवित हैं। पीले पृष्ठों में उन प्रजातियों के नाम जो तेजी से कम होती जा रही है। भूरे पृष्ठों पर ऐसी प्रजातियों के नाम हैं जिनके बारे में आशंका है कि ये कम हो रही हैं या जिनके बारे में पूरा विवरण उपलब्ध नहीं है।

इण्टरनेशनल रेड डेटा बुक की ५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं इनका प्रकाशन जनवरी १९७२ को प्रारम्भ हुआ था। विभिन्न पुस्तकों में समाहित जानकारी का क्षेत्र निम्नलिखित है-

१. प्रथम पुस्तकः-स्तनधारियों की २३६ प्रजातियाँ तथा २९२ उप प्रजातियाँ।

२. द्वितीय पुस्तकः- पक्षियों की २८७ प्रजातियाँ तथा ३४१ उप प्रजातियाँ।

३. तृतीय पुस्तकः- मरुस्थलीय, उभयचर तथा सरिसृपियों की ३६ प्रजातियाँ तथा ११९ उपप्रजातियाँ।

४. चतुर्थ पुस्तकः- मछलियाँ, दुर्लभ एवं अप्राप्य प्रजातियाँ

५. पंचम पुस्तकः- पादप, दुर्लभ तथा अप्राप्त प्रजातियाँ

३.४ भारत में वन्यजीवन संरक्षण के लिये संगठन तथा कानून

वनस्पतिजात और प्राणिजात की संकटापत्र जातियों की संख्या में लगातार वृद्धि होने की वजह से देश के वन्यजीवन को संरक्षित और प्रबन्धित करने के लिये विभिन्न प्रयास किये जा रहे है।

वन्यजीवन बचाने के लिये गैर–सरकारी ऐच्छिक संगठन और साथ ही सरकारी संगठन राज्य और केन्द्र स्तर पर गठन किये जा रहे है।

गैर–सरकारी संगठन (Non-Government Organizations):–

इसके अन्तर्गत कई गैर सरकारी, ऐच्छिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संगठन वन्यजीवन संरक्षण के लिये आते है जो वन्य जीवन संरक्षण में भाग लेते है। ये मुख्य संगठन निम्न है:–

(१) बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी (Bombay Natural History Society)

(२) वन्यजीवन रक्षण समिति भारत, देहरादून

(३) वर्ल्डवाइड फंड फॉर नेचर, भारत (Worldwilde Fund for Nature, India Government Organization)

सरकारी संगठन (Government Organizations):–

समय समय पर राज्य और संघ सरकार वन्य जीवन संरक्षण के लिये कई असख्य वन्यजीवन एक्ट बनाये गये । कुछ इस प्रकार है:–

(१) Chennai wilde Elephant Preservation Act, 1873.

(२) All India Elephant Preservation Act, 1879.

(३) The Wilde Birds and Animals Protection Act, 1912.

(४) Wildelife Protection Act, 1972 etc.

वन्य प्राणी (संरक्षण)–अधिनियम १९७२

इन अधिनियम में १९८६ तथा १९९१ में संशोधन किये गये हैं।

भारतीय वन्य जीव बोर्ड की स्थापना १९५२ में बने बोर्ड को १९९१ में पुनर्गठित कर किया गया। इस समय इस बोर्ड के मुख्य कार्य हैं–

१. वन्य जीवों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिये सुझाव देना।

२. राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य, प्राणी उद्यानों तथा वनों की देखरेख सम्बन्धी सुझाव एवं सलाह देना।

३. वन्य जीवों तथा उनसे निर्मित वस्तुओं के निर्यात के सम्बन्ध में सुझाव देना।

४. वन्य जीवों के प्रति लोगों में जागृति विकसित करना।

५. समय समय पर वन्य जीवों की सुरक्षा एवं संरक्षण की स्थिति का अध्ययन करना।

भारतीय जीव जन्तु कल्याण बोर्ड

भारत सरकार के अधीन यह एक स्वायत्तशासी संस्थान है। इसके प्रमुख कार्य है–

१. जीव जन्तुओं के कल्याण की योजनाओं को बढ़ावा देना।

२. जन्तुओं पर हो रहे अत्याचार को रोकना।

३. पशु पक्षी आश्रय स्थल, आवारा पशुओं के इलाज, पशु शरण स्थलों के संचालन के लिये वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना।

अध्याय–०४
संरक्षित क्षेत्र

भारत में ६ मार्च, १६८० को विश्व संरक्षण युक्ति (world conservation strategy) का प्रमोचन करते समय हमारी पुरानी पद्धति से पौधों को और प्राणियों की देखभाल, संरक्षण और पूजा पर ज़ोर दिया और बताया कि संरक्षण में रुचि एक भावुकता नही है परन्तु हमारे महात्माओं द्वारा जाने गये सच का पुनः अविश्कार है।

भारतीय परम्परा यह समझाती है कि जीवन, मनुष्य, प्राणी और पादप के सभी रुप एक दूसरे से इस तरह जुड़े होते है कि एक में विक्षोभ अन्य में असंतुलन उत्पन्न करता है।
संरक्षण को मुख्यतः दो भागों में बाँटा जा सकता हैः–

(१) स्वस्थानि संरक्षण (इन–सीटू संरक्षण) (In situ conservation)

(२) एक्स सीटू संरक्षण (ex situ conservation)

(१) स्वस्थानि संरक्षण (In situ conservation)

यहाँ आनुवंशिक सम्पदाओं का संरक्षण उनके अनुरक्षण (maintenance) द्वारा प्राकृतिक या फिर मानव–निर्मित परिस्थितिक तन्त्र में जिनमें ये पाय जाता है में किया जाता है। यह आनुवाशिंक संरक्षण के लिये एक आदर्श तंत्र है। इस प्रकार के अन्तर्गत भिन्न वर्गो के संरक्षित क्षेत्रो के तंत्र आते है।
इस प्रकार के संरक्षण के अन्तर्गत निम्नलिखित क्षेत्र आते हैः–

(१) वैज्ञानिक आरक्षित और पूर्ण प्रकृति आरक्षित क्षेत्र

(२) राष्ट्रीय उद्यान

(३) राष्ट्रीय स्मारक और भूचिन्ह

(४) प्रबन्धित वन्य जीवन अभ्याख्य और प्रकृति आरक्षित क्षेत्र

(५) परिरक्षित दृश्य भूमि

(६) सम्पदा आरक्षित

(७) राष्ट्रीय जीवीय क्षेत्र और मानव विज्ञान आरक्षित

(८) बहुउपयोगी प्रबन्ध क्षेत्र।

उपर्युक्त वर्गो में, पहले पाँच सचमुच पूरी तरह प्रबन्धित आवास के साथ परिरक्षित क्षेत्र माने जाते है। १६८६ तक (wcmc,1989) कुल ४,५४५ विश्वव्यापी परिरक्षित क्षेत्र अभिहित है जो कुल ४८,४६,३०० वर्ग किमी घेरते है जिसमें धरातल की सिर्फ़ ३.२% सतह है। धरातल का केवल २% वैज्ञानिक आरक्षित और राष्ट्रीय उद्यमी के पूर्ण परिरक्षित वर्गो में आता है। विश्व का सबसे बड़ा उद्यान ग्रीनलैण्ड में है। यह ७,००,००० वर्ग किमी पर फैला है। इसको छोड़कर, धरातल का केवल १.६% पूर्ण परिरक्षित है।

(२) एक्स सीटू संरक्षण (Ex situ conservation)

यह संरक्षण उनके आवासों के बाहर होता है अनुवांशिक सम्पदा केन्द्रों, चिड़ियाधरों, वानस्पतिक उद्यान, संवर्धन संचय इत्यादि में लगातार नमूना जनसंख्या द्वारा या जीन कोशों के रुप में, जर्मप्लाज़्म बैक, बीजों परागकण, अंडाणु कोशिकाओं इत्यादि के लिये प्रयोग में किया जाता है। तथा यह जैव विविधता संरक्षण के लिये आरक्षित स्थानों, उद्यानों को बनाने से यह जैव विविधता को एक सीमित दायरे में बाँध देता है। अतः जैव विविधता को एक स्थान से देर जाकर संरक्षित करना एक्स-सीटू संरक्षण कहलाता है।

बाह्य परिरक्षित क्षेत्रो का सबसे अच्छा उदाहरण है, विश्व के स्थलीय पारिस्थितिक तन्त्रों में रहने वाले पारम्परिक समाज, जो हजारो वर्षों से शिकारियों, मछुआरों, किसानों और संग्राहको की तरह रह रहे है। ये इन क्षेत्रों को व्यवस्थित करते है और बड़े प्रभावी तरीके से संरक्षण कर रहे है। यूनेस्को (UNESCO) द्वारा शुरु किया गया MAB कार्यक्रम है।

अध्याय–०५
राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य

सन् १९८१ में भारत में १६ राष्ट्रीय उद्यान और २०२ अभ्यारण्य ७४,७६३ वर्ग किमी में फैले हुए थे जो कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग २.३% था। १९८३ में ४४ राष्ट्रीय उद्यान और २०७ अभ्यारण्य हो गये है जो ८८,००० वर्ग किमी को घेरती है अर्थात संरक्षित क्षेत्र देश का २.७% क्षेत्र था। जून १९९२ तक ७३ राष्ट्रीय उद्यान और ४१६ अभ्यारण्य हो गये है। देश के विभिन्न भागों में सन् २००० तक ८८ राष्ट्रीय उद्यान एंव ४९० अभ्यारण्य स्थापित किये जा चुके हैं जो १.५३ लाख वर्ग किमी क्षेत्र हैं।

५.१ राष्ट्रीय उद्यानों की स्थापना

वन्य जीवों की रक्षा के लिये देश में ७५ राष्ट्रीय उद्यानों (नेशनल पार्क) की स्थापना की गई है। राजस्थान में तीन राष्ट्रीय उद्यान हैं

१. रणथम्भौर
२. राष्ट्रीय मुक्त उद्यान जैसलमेर तथा
३. राष्ट्रीय पक्षी पार्क, घना (भरतपुर)

केन्द्रीय सरकार की आर्थिक सहायता से राज्य सरकारें राष्ट्रीय वन्य जीव उद्यानों की स्थापना करती हैं। केन्द्र सरकार राज्यों को १०० प्रतिशत अनावर्तक तथा ५० प्रतिशत आवर्तक व्यय पर अनुदान देती हैं।

राष्ट्रीय उद्यानों में निम्नलिखित प्रतिबन्ध होते हैं–

१. पशु चारण पर पूर्ण प्रतिबन्ध।
२. आम व्यक्ति के आवागमन पर पूर्ण प्रतिबन्ध।
३. शिकार करने तथा वनोपज को बाहर ले जाने पर पूर्ण प्रतिबन्ध।
४. वन्य जीवों को किसी भी प्रकार से प्रभावित करने वाली क्रियाओं पर प्रतिबन्ध।

भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यानों तथा अभ्यारण्यों की सूची निम्न सारणी में प्रस्तुत की गई है।

सारणी–१ भारत के प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान एवं अभ्यारण्य

बाधवगढ़ राष्ट्रीय उद्यान	मध्यप्रदेश	बाघ, तेंदुआ, चीतल, सांभर, नीलगाय, जंगली सूअर
बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक	हाथी, तेंदुआ, चीतल, सांभर, हिरण
बारघट्टा राष्ट्रीय उद्यान	कर्नाटक	हाथी,चीतल,हिरण, भालू, पक्षी
सदा अभ्यारण्य, चिकमंगलूर	कर्नाटक	हाथी, तेंदुआ, सांभर, जंगली सूअर, चीतल
मोमबंध अभ्यारण्य, मुंगेर	बिहार	चीता, तेंदुआ, सांभर, जंगली सूअर, चीतल
अभ्यारण्य, होशंगाबाद	मध्यप्रदेश	चीता, तेंदुआ, सांभर, चीतल, हिरण, जंगली भैंसा, जंगली सूअर
बोरीविली राष्ट्रीय उद्यान, बम्बई	महाराष्ट्र	तेंदुआ, सांभर, जंगली सूअर, हिरण, लंगूर

चन्द्रप्रभा अभ्यारण्य, बाराणसी	उत्तरप्रदेश	चीता, तेंदुआ, सांभर, नीलगाय, भालू एवं पक्षी
कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान, नैनीताल	उत्तराचंल	चीता, सांभर, चीतल,हाथी, बघेरा, नीलगाय, भालू, हिरण इत्यादि
दविगाम अभ्यारण्य, श्रीनगर	जम्मूकाश्मीर	तेंदुआ, काला भालू, लाल भालू, हिरण एवं हपुल
डाल्मा वन अभयारण्य, सिंहभूम	बिहार	हाथी, तेंदुआ, जंगली सूअर, भालू एवं रीछ
डाम्प वन्य अभयारण्य, ऐजल	मिजोरम	चीता, सांभर, हाथी, तेंदुआ, हरण, किंग कोबरा, अजगर
इन्डेली वन्य जीव अभ्यारण्य, धरवाड़	कर्नाटक	चीता, तेंदुआ, हाथै, चीतल, सांभर, जंगली सूअर,
दुधवा राष्ट्रीय उद्यान, लखा लखीमपुर-खीरी	उत्तरप्रदेश	चीता, सांभर, हाथी, तेंदुआ, चीतल, नीलगाय, हिरण
रविकुलम राजमल्ले राष्ट्रीय उद्यान, पटकी	केरल	हाथी, चीता, सांभर, तेंदुआ, जंगली सूअर, गौर, लंगूर,
सागर वन्य जीव अभयारण्य मंदसौर	मध्यप्रदेश	चीतल, तेंदुआ, सांभर, नीलगाय, चिकारा, हिरण एवं पक्षी
गरम पानी वन्य जीव अभ्यारण्य, दिफू	असम	हाथी, जंगली भैंसा, बघेरा, लंगूर
कैवलादेव धना पक्षी बिहार, भरतपुर	राजस्थान	चीतल, सांभर, काला हिरण, जंगली सुअर, साइबेरियन सारस, मुर्गाबी, हरियल आदि
गिर राष्ट्रीय उद्यान लूनागढ़	गुजरात	एशियाई शेर, चीतल, सांभर, तेंदुआ, चौसिंगा, जंगली सुअर, चिन्कारा
गान्धार बुद्ध वन्य जीव अभ्यारण्य	बिहार	चीतल, सांभर, बघेरा, हिरण, चीतल
हजारीबाग वन्य जीव अभ्यारण्य, हजारीबाग	बिहार	चीता, सांभर, चीतल तेंदुआ, हिरण, जंगली बिल्ली
अन्टांग्की वन्य अभयारण्य कोहिमा	नागालैण्ड	हाथी, गौर, जंगली सूअर, चीता, तेंदुआ, हिरण, पक्षी एवं सांप
जलदापारा वन्य जीव अभ्यारण्य, जलपाईगुड़ी	पश्चिमी बंगाल	हाथी, चीता, तेंदुआ, दरियाई घोड़ा जंगली सुअर, सांभर
कान्हा किसली राष्ट्रीय उद्यान एडला एवं वालाघाट	मध्यप्रदेश	बाघ, तेंदुआ, गौर, चीतल, सांभर नीलगाय, बारहसिंगा, जंगली सुअर
कावला वन्य जीव अभयारण्य आदिलाबाद	आंध्रप्रदेश	चीता, तेंदुआ, गौर, सांभर, चीतल, जंगली सुअर, भालू
काजीरंगा राष्ट्रीय उद्यान जोरहट	असम	एक सींग वाला दरियाई घोड़ा, चीता, जंगली सूअर, गौर, जंगली भैसा, बधेरा
खमचंदाजेंदा राष्ट्रीय उद्यान गंगटोक	सिक्किम	बधेरा, लाला पंडा, जंगली गधा, पहाड़ी भालू, हिरण, भेड़
किन्नरसानी वन्य जीव अभ्यारण्य, सम्मान	आंध्र प्रदेश	चीता, बधेरा, तेदुआ, भैडिया गौर, चीतल, सांभर, लीलगाय, भालू
मालापट्टी पक्षी बिहार, नैल्लोर	आंध्रप्रदेश	फाख्ता, हरियल, मुर्गाबी, बतख, जलकाक
मानस वन्य जीव अभ्यारण्य, बारपेटा	असम	हाथी, चीता, बधेरा, एक सींग का दरियाई घोड़ा, जंगली सूअर, भालू सांभ्र
मुदुमलाई वन्य जीव अभ्यारण्य, नीलीगरि	तमिलनाडु	हाथी, चीता, तेदुआ, गौर, चीतल, सांभर, हिरन, जंगली कुत्ते
कोल्लेरू पेलिकनरी, ऐल्लुरू	आंध्र प्रदेश	अबाबील, सारस, पक्षी

मुकबिल वन्य जीव अभ्यारण्य, दक्षिणी कनारा	कर्नाटक	तेंदुआ, हाथी जंगली सूअर, सांभर
नागरहोल राष्ट्रीय उद्यान, कुर्ग	कर्नाटक	हाथी, चीता, तेंदुआ, सांभर, चीतल भालू, तीतर, चकोर
नम्दफा वन्य जीव अभ्यारण्य, तिरप	अरुणाचल प्रदेश	चीता, तेंदुआ, बघेरा, जंगली भैंसा, गौर, हाथी, हिरन व सांप
नवेगांव राष्ट्रीय उद्यान, भंडारे	महाराष्ट्र	चीता तेंदुआ, भालू, जंगली भैंसा, सांभ्र चीतल
पंचमढ़ी वन्य जीव अभ्यारण्य, होंशंगाबाद	मध्यप्रदेश	बाघ, तेंदुआ, बघेरा, भालू, जंगली भैंसा हिरन, चीतल, सांभर, लीलगाय
पशाल वन्य जीव अभ्यारण्य	आंध्रप्रदेश	चीता, तेंदुआ, सांभर, चीतल, नीलगाय
पक्कुई वन्य जीव अभ्यारण्य, कार्गेगह	अरूणाचल प्रदेश	हाथी, देंदुआ, बधेरा, जंगली सूअर, हिरन, गौर, चीतल, सांभर
पारम्बिकुलम वन्य जीव अभ्यारण्य, पालघाट	केरल	चीता तेंदुआ, वधेरा, हाथी, गौर, नीलगाय, सांभर, चीतल, भालू
पेंच राष्ट्रीय उद्यान, नागपुर	महाराष्ट्र	चीता, तेंदुआ, भालू, गौर, सांभर, चीतल, नीलगाय, चौसिंगा, हिरण
पेरियार वन्य जीव अभयारण्य, इदुक्की	केरल	हाथी, देंदुआ, बधेरा, गौर, नीलगाय, सांभर, भालू हिरन, जंगली सूअर,
रणथम्भौर वन्य जीव अभ्यारण्य व टाइगर प्रोजेक्ट	राजस्थान	बाघ, चीता, शेर, तेंदुआ, लकड़बग्घा, सांभर
सवाई माधेपुर	राजस्थान	चीतल नीलगाय, जंगली सुअर, भालू जंगली बिल्ली
रोहला राष्ट्रीय उद्यान, कुल्लू	हिमाचल प्रदेश	पहाड़ी तेंदुआ, भूरा, भालू, कस्तूरी हिरण, पहाड़ी मुर्गे, पहाड़ी कबूतर
सरिस्का वन्य जीव अभयारण्य, अलवर	राजस्थान	चीता, तेंदुआ, लकड़बग्घा, सांभर, चीतल, जंगली सुअर, हिरण, अजगर, लंगूर
शारावथी घाटी वन्य जीव अभयारण्य, मिशोगा	कर्नाटक	हाथी, चीता, बघेरा, तेन्दुआ, गौर, सांभर, चीतल, जंगली सुअर, हिरण अजगर, लंगूर
शिकरी देवी वन्य जीव अभयारण्य, मंडी	हिमाचल प्रदेश	काला भालू, कस्तूरी हिरण, तेन्दुआ, लकड़बग्घा, भालू सांभर, चौंसिंगा, नीलगाय, जंगली, सुअर हिरण
माधव राष्ट्रीय उद्यान, शिवपुरी	म०प्र०	चीता, चीतल, बघेरा, तेन्दुआ, लकड़बग्घा, भालू, सांभर, चौंसिंगा, नीलगाय, जंगली, सुअर हिरण
सोमेश्वर वन्य जीव अभयारण्य दक्षिणी कनारा	कर्नाटक	चीता, तेन्दुआ, भालू, जंगली कुत्ते, सांभर, गौर, चीतल
सोनाई रूपा वन्य जीव अभयारण्य, तेजपुर	असम	एक सींग वाला दरियाई घोड़ा, हाथी, सांभर, जंगली सुअर, भालू
सुंदरवर टाइगर रिजर्व, चौबीस परगीना	पश्चिमी बंगाल	चीता, हिरण, जंगली, सुअर, मगर
टडोबा राष्ट्रीय उद्यान, चन्द्रपुर	महाराष्ट्र	चीता, तेन्दुआ, भालू, गौर, सांभर,
टडवाई वन्य जीव अभयारण्य वारंगल	आंध्रप्रदेश	चीता, बधेरा, गौर, सांभर, काला हिरण, जंगली बिल्ली
तन्सा वन्य जीव अभयारण्य, चाणे	महाराष्ट्र	जंगली सुअर, तेन्दुआ, सांभर, चीतल, चौंसिंगा, पक्षी

तुंग भद्रा वन्य जीव अभयारण्य, बेलारी	कर्नाटक	तेंअुआ, चीतल, चौसिंगा, काला हिरण चिनकारा, गोंणव व पक्षी
वल्वाडर राष्ट्रीय उद्यान भवनगर	गुजरात	भेंडिया, काला हिरण
वेनाड वन्य जीव अभयारण्य, कन्नानोर एवं कोजीकोंड	केरल	हाथी गौ, सांभर, चीतल, जंगली सूअर, हिरण
रंगाथट्टू पक्षी विहार, मैसूर	कर्नाटक	मुर्गाबी, हरियल, कबूतर, चकोर, सारस आदि अनेक पक्षी
बेटांवगल पक्षी बिहार, चिंगलपूर	तमिलनाडु	अनेक जंगली पक्षी

५.२ अभ्यारण्य (वाइल्ड लाइफ सैन्च्यूरी)

वन्य जीवों के संरक्षण के लिए देश में पशु अभ्यारण्य स्थापित किये गये हैं। अभ्यारण्यों में इतने प्रतिबन्ध नहीं हैं जितने कि राष्ट्रीय उद्यानों में होते हैं। यहां वनवासियों को औचित्य अनौचित्य के आधार पर कुछ सुविधाएं प्रदान कर दी जाती हैं जिनके बारे में राज्य सरकारें निर्णय लेती हैं। राजस्थान में २१ अभ्यारण्य हैं–

सरिस्का अभ्यारण्य	अलवर
दर्रा वन्य अभ्यारण्य	कोटा
जवाहर सागर अभ्यारण्य	कोटा
राष्ट्रीय चम्बल अभ्यारण्य	कोटा
कुम्भलगढ़ अभ्यारण्य (रणकपुर)	उदयपुर
जयसमन्द वन्य जीव अभ्यारण्य	उदयपुर
आबू संरक्षण स्थल	सिरोही
सीता माता अभ्यारण्य	चित्तौड़गढ़
वन विहार अभ्यारण्य	धौलपुर
ताल छापर अभ्यारण्य	चुरु
जम्बा रामगढ़ अभ्यारण्य	जयपुर
नाबगढ़ अभ्यारण्य	जयपुर
रामगढ़ विषधरी	बूंदी
बन्दबारेठा अभ्यारण्य	भरतपुर
राम सागर अभ्यारण्य	भरतपुर
लबाड़ी की नाल	उदयपुर व पाली
रावली टाडगढ़ अभ्यारण्य	अजमेर
पीपल खूंट अभ्यारण्य	बांसवाड़ा
शेरगढ़(बारा)	कोटा
केलादेव अभ्यारण्य	सवाई माधोपुर
भैंसरोड़ गढ़ अभ्यारण्य	चित्तौड़गढ़

अध्याय–०६
संकटापन्न जातियों के संरक्षण हेतु विशेष परियोजनायें

६.१ बाघ परियोजना (Project Tiger)

जंगल में वन एवं वन्य जीव प्रकृति का सन्तुलन बनाये रखते हैं। वन जहाँ वन्य जीवों के आवास स्थल होते हैं, वहीं ये वन्य जीवन अपना भोजन एवं निश्चित भोजन श्रृंखला के तरह उसी वन क्षेत्र से पाते रहते है। छोटे–छोटे शाकाहारी जीव (Hervivores) घास पर आधारित होते हैं, जो अपेक्षाकृत बड़े जीवों (carnivores) का भोजन होते हैं। एक निश्चित भोजन श्रृंखला के अन्तर्गत यह जीव मांसाहारी जीवों की खुराक बनते है। यह एक क्रम है जो निरन्तर चलता रहता है, जब तक कि कोई अप्राकृतिक घटना या विशेष रूप से अपनाई योजना से इसे छेड़ा न जाये। इस श्रृंखला के बाघ (टाइगर) शीर्ष पर होता है और उसे ही इस चक्र का नियंत्रक माना जाता है। अतः निःसन्देह बाघ पर्यावरण के क्षेत्र में प्रकृति संतुलन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण घटक होता है।

भारत में वन एवं वन्य जीव सम्पदा सदैव से ही बहुतायत में और प्रकृति अनुकूल रही है जिससे निःसंदेह प्रकृति का सन्तुलन निर्बाध रूप से चलता रहा है। भारत के जंगलों में बाघों की संख्या की बहुतायत का केवल इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि इस सदी के प्रारम्भ में इनकी संख्या लगभग ४०,००० बताई जाती है, लेकिन केवल मनोरंजन और प्रतिष्ठा के लिये इनका शिकार, बड़े–बड़े भवन और आलीशान इमारतों में इनकी खालों का प्रदर्शन और सजावट के लिये इनकी उपलब्धि ने इनकी संख्या को कम कर दिया। ईंधन इनके आवास–स्थल घने जंगलों का भी देश के विकास के नाम पर भारी विनाश हुआ। बांधों के लिये जमीन ली गई, घने जंगल काट लिये गये। मकानों के निर्माण और बड़े–बड़े उद्योगों के लिये भी वन क्षेत्र काम में आये। इस सबका असर यह हुआ कि प्रकृति संतुलन तंत्र का महत्वपूर्ण घटक या बाघ की संख्या में निरन्तर कमी आती गई। सन् १९७२ में जब पहली बार देश में अधिकारक रूप से बाघ–गणना हुई तो इनकी कुल संख्या १०८२७ बताई गई।

देश की बढ़ती जनसंख्या भी इन विनाश का एक प्रमुख कारण रही है। गांव के लोगों ने अपने पेट भरने के लिये अधिक अन्य उपजाने हेतु शनैः शनैः आसपास के जंगलों की ओर बढ़ना शुरू कर दिया। मवेशियों को चराने के लिये जंगल की वनस्पति का उपयोग हुआ। छोटे–मोटे जंगली जानवरों का शिकार भी चराने के लिये जंगल की वनस्पति का उपयोग हुआ। छोटे–मोटे जंगली जानवरों का शिकार भी चोरी छिपे हुआ। इससे सारी स्थिति पर असर पड़ा। बाघों को निर्भय आवास और अपर्याप्त भोजन के अभाव में एक जगह से दूसरी जगह पलायन करना पड़ा कुछ अपनी स्वयं की मौत के ग्रास बने और अनेक शिकारियों के हाथों समाप्त हो गये।

सन् १९७० का वर्ष इस सन्दर्भ में अत्यन्त महत्वपूर्ण रहेगा जबकि बाघों की निरनतर धटती संख्या के कारण इसके शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसी क्रम में भारतीय वन्यजीव मण्डल की अनुशंशा पर सन् १९७२ में वन्यजीव (सुरक्षा) अधिनियम भी संसद से पारित हुआ जिसमें बाघों की रक्षा सुरक्षा और उनकी देखभाल शमिल थी।

लेकिन केवल शिकार के प्रतिबन्ध तथा वन्य जीव (सुरखा) अधिनियम से बाघों की सुरक्षा सम्भव नहीं थी। अतः यह प्रस्तावित किया गया कि देश में बाघ बहुतायत क्षेत्रों को 'आरक्षित क्षेत्र' घोषित कर दिया जाये जिसमें कुछ क्षेत्र को कोर क्षेत्र रखा जाय जहां कोई बाहरी व्यवधान न हो, और उसके बाहर के कुछ क्षेत्र को 'बफर क्षेत्र' के नाम से रखा जाय जिसकी प्राकृतिक सम्पदा का सुखानुकूल उपयोग भी किया जा सकता हो।

इस तरह 'बाघ परियोजना' (प्रोजेक्ट टाइगर) नामक केन्द्रीय प्रायोजित योजनांर्गत स्कीम १ अप्रैल १६७३ से प्रारम्भ की गई। जिसके दो निम्न मुख्य उद्देश्य रखे गये-

१. भारत में वैज्ञानिक, आर्थिक, सौन्दर्यपरक, सांस्कृतिक और पारिस्थितिक महत्व के लिये बाघों की उपयोगी संख्या का अनुरक्षण सुनिश्चित करना।

२. ऐसे जैविक महत्व के क्षेत्रों को लोगों के हित, शिक्षा और मनोरंजन के लिये राष्ट्रीय विरासत के रूप में हमेशा परिरक्षण करना।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये अब तक १३ राज्यों में २१ बाघ रिजर्व स्थापित किये गये हैं, जिनका कुल क्षेत्रफल ३०४६७ वर्ग किमी० है। बान्धवगढ़ रिजर्व (मध्यप्रदेश) तथा तदोबा-अन्धेरी (महाराष्ट्र) क्रमशः २० वां तथा २१वां बाघ रिजर्व है जो सत्र १६६३-६४ में ही स्थापित हुए हैं।

१. बान्दीपुर (कर्नाटक)–Bandipur (Karnataka):–

पश्चिमी घाट के आंचल में एक अत्यन्त सुव्यवस्थित और संरक्षित वन्य जीवन रिजर्व 'बान्दीपुर' वन्य जीवों का एक विशाल आश्रय स्थल है जिसे इसकी भौगोलिक स्थिति व अन्य प्राकृतिक सुविधाओं के कारण ही राष्ट्रीय उद्यान का स्तर मिला है तथा इसे प्रोजेक्ट टाइगर योजना के उपयुक्त अस्वीकार किया गया है। १६३० के दशक में केवल ६० किमी० क्षेत्र में बना यह क्षेत्र निकट के ही वेनुगोपाल वन अभयारण्य के १६४१ में मिलने से वृहद रूप में आ गया जो निरन्तर विस्तार पाकर आज ८६६ वर्ग किमी. क्षेत्र में फैला हुआ है। उत्तर में नागर-होल राष्ट्रीय पार्क-कर्नाटक दक्षिण में मुदुमलाई अभयारण्य-तमिलनाडु और पश्चिम में वाईनेड अभयारण्य-केरल से घिरा हुआ यह स्थान अपनी गुणवत्ता के कारण दक्षिणी भारत का सबसे बड़ा हाथियों का आवास स्थल भी माना जाता है।

अधिकतर पहाड़ी यह स्थान घाटियों के प्रकार का है जिसमें वन्य जीव सामान्यतया अपने आपको सुरक्षित समझते हैं। नूगू नदी इस क्षेत्र के मध्य से तथा काबिनी नदी इसके उत्तर तथा पश्चिमी सीमा से लगकर बहती है तथा पानी की अथाह पूर्ति करती है ६२५ मिमी से १२५० मिमी तक वार्षिक वर्षा से सघन वन संरक्षित है जिससे बाघों के लिये आदर्श स्थान बन गया है इसके अतिरिक्त इस राष्ट्रीय उद्यान में विभिन्न प्रकार के अन्य वन्य जीव भी बहुतायत से हैं, जिनमें चीतल, साभर, चौसिवंगा, गौर, जंगली रीछ, भालू, लंगूर, तेंदुआ, नेवला, जंगली कुत्ता, गिलहरी, कस्तूरी मृग, बिलाव आदि मुख्य हैं।

रेंगने वाले जीवों में मगर, सांप, और गिरगिट तथा पक्षियों में कठफोडवा, बटेर, हरे तोते, क्रोंच, छोटा बत्तख, सारस, जल पक्षी और जल मुर्गी आदि प्राप्य हैं।

दक्षिण भारत में एक अच्छा दर्शनीय और विविध प्रकार का वन्य जानकारी उपलब्ध कराने वाला यह आकर्षक राष्ट्रीय उद्यान है।

२. बक्सा (पश्चिमी बंगाल) Buxa (West Bengal):-

यह वन अभ्यारण्य (wild life sanctuary) पश्चिमी बंगाल के शीर्ष उत्तर में वहां स्थित है जहां हिमालय पर्वत श्रेणी से आने वाली अनेक नदियां पहाड़ों से मैदानी भाग में प्रवेश लेती हैं। सन्कोज नदी इसकी पूर्वी सीमा पर बहती है तथा अन्य नदियों में राईडक, जयन्ती बाला, डीमा और पना प्रमुख हैं, जिनसे यह क्षेत्र सदैव हरा-भरा और वन्य जीवों के आश्रय के उपयुक्त रहता है। एक तरफ बंगाल के सघन जंगल तथा दूसरी ओर असम का मन्सा टाइगर रिजर्व और तीसरी तरफ भूटान के वन क्षेत्र से प्राकृतिक रूप से घिरा हुआ 'बक्सा' टाइगर रिजर्व अनेक प्रकार के वन्यजीवों को संरक्षण दिये हुये हैं। हाथियों के लिये अनुकूलता के कारण असम और भूटान से पलायन होने वाले हाथी यहां अपना आश्रय बनाते हैं।

वन्य पशुओं में हाथी, सांभर, मुन्तजैक, चीतल, जंगली सूअर, गौर, लघुपुच्छ बन्दर, लंगूर, बाघ, तेंदुआ, बिलाव, भालू, सेही, हार्नबिल और जंगली बिल्ली आदि हैं ।

काफी सख्त देखरेख के बावजूद इस क्षेत्र पर पड़ौसी आबादी का अभी दबाव है। मवेशियों के चारागाह के रूप में काम में आने के कारण बफर जोन लगभग बंजर बनता जाता है। पर फिर भी प्रयास कर इसको व्यवस्थित रखने के सरकारी और गैर सरकारी संस्थाएं निरन्तर प्रयत्नशील हैं।

३. कार्बेट (उत्तर प्रदेश)- Corbett (Uttar Pradesh):-

उत्तरप्रदेश में कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिये सदियों से विश्व में जाना पहचाना वन्य जीव संरक्षण स्थल है। असीम वन सम्पदा युक्त हिमालय पर्वत श्रृंखलाएं, लहराती शिवालिक पहाड़ियां और विस्तृत हरे-भरे मैदानी क्षेत्र मे स्थित इस टाइगर रिजर्व को प्रकृति ने सभी सुविधाएं विरासत मे ही उपलब्ध कराई है जिससे यह स्वतः ही बाघों के लिये आकर्षण बना है, और इसी कारण जहां देश के अधिकतम बाघों को सुरक्षा देने का कार्य यह उद्यान अपने आप मे संभाले हुये हैं, वही इसकी महत्ता के कारण प्रथम प्रोजेक्ट टाइगर रिजर्व के रूप मे भी इसका ही चयन हुआ है। सच तो यह है कि इसी स्थान की उपयुक्तता ने ही 'बाघ परियोजना' को प्रारंभ करनें की प्रेरणा दी जिसके आधार पर फिर अनेक स्थानों का इसी योजना के तहत चयन हुआ है।

विविधता लिये अन्य वन्य पशुओं मे हाथी (elephant), लंगूर (Langur), बन्दर (Rhesus Monkey), चीतल (Chital), सांभर (sanbar), जंगली सुअर (Wild pig), विभिन्न प्रकार के हिरन (Hog and Barking Deer), सियार (Jackal), गोरल (Goral), की प्रमुखता है। जल जीवों मे घड़ियाल (Gharial), मगर (Crocodile) तथा महसीर (Mahseer) और कलबसु (Kalbasu) जैसी मछलियां है। अनेक प्रकार के सर्पो-अजगर (Python), गेहुवन सांप (Cobra), क्रेट (Krait) और वाईपर (Viper) की अनगिनत संख्या है।

राष्ट्रीय सर्वे के आधार पर लगभग ५८५ प्रकार की पक्षी प्रजातियां यहां मिलती है। जिनमे मोर (Peacock), कौवे (Crow), गिद्ध (Vulture), कठफोड़वा (Woodpecker), पीलक (Oriole), बत्तख (Dicls and Teals), जल कौवा (Cormorant), सुग्गा (Parakeet), जंगल मुर्ग (Jungle Gowls), सारिका

(Laughing Thrush), तीतर (Partridge), डोंगों (Drongo), कलीज (Kaleej) मुख्य रूप से मिल जाती है। प्रशिक्षित स्टाफ, आवश्यक प्रबंध व्यवस्था, बफर क्षेत्र मे वृद्धि, नियंत्रित मानव प्रवेश, संतुलित परितंत्र के फलस्वरूप निश्चय ही बाघों की संख्या वृद्धि उत्साहवर्द्धक रही है जिससे इनकी उपादेयता की औचित्यता सिद्ध हुई है।

४. दुध्वा (उत्तरप्रदेश) Duduwa (Uttar Pradesh):–

उत्तर उष्णकटिबंधीय क्षेत्र मे स्थित यह टाइगर रिजर्व उत्तर प्रदेश मे हिमालय की तराई तथा तराई के मैदानों के बीच मे स्थित है। घने घास के मैदान मे सघन वृक्षों की विविधता है। जिनमें साल, बहेड़ा, शीश, खैर, जामुन, कुसुम, गूलर, सेंमल आदि मुख्य है। खुले जंगल और अनेक प्राकृतिक जलाशयों से युक्त इस क्षेत्र मे बाघ तथा उसकी प्रजाति तेंदुआ, चीता आदि को उपयुक्त वातावरण उपलब्ध है जिससे बाघ–परियोजना का महत्व पूरा हुआ है।

वन्य पशुओं मे (शाकाहारी तथा मांसाहारी) हिरन (Spotted, Hog and Barking Deer), सांभर (Samber), जंगली रीछ (Wild Bear), भालू (Sloth Bear), मुख्य हैं। स्थानीय तथा प्रवासी पक्षियों की लगभग ३७५ प्रजातियां बताई जाती हैं जिनमे धनेश (Hornbill), लाल मुर्ग (Red Kimngle Fowl), कठफोड़वा (Wood Pecker), पीलक (Orioles), विभिन्न प्रकार की बत्तखें (Ducks), कलहंस (Goose), जल कौवा (Cormorants), क्रोंच (Storks), आदि सम्मिलित हैं। यहां का परिस्थिकी तंत्र गेंडे (Rhinoes) के लिये उपयुक्त होने के कारण इस जाति को पुनः बसने का कार्य यहां १९८५ से प्रारंभ किया था जिसके फलदायक परिणाम मिले हैं। इस निश्चित योजना के तहत संरक्षण और विकास गति पर हैं।

५. इन्द्रावती (म०प्र०):–

इन्द्रावती नदी के किनारे पर स्थित यह रिजर्व मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आंध्रप्रदेश तथा उड़ीसा के घने जंगलों की श्रृंखला समूह से जुड़ा है। घने जंगल और स्वच्छ पानी के अनेक प्रपातों से इसका सौन्दर्य ही नही बिखरा है बल्कि इसे वन्य जीवों के स्वच्छंद विचरण हेतु सुविधाएं प्राप्त हुई है। जंगली भैंसों (Wilf Buffaloes) के लिये देश का सबसे बड़ा और सबसे अच्छा आश्रय स्थल है। लुप्त हो रही बारासिंगा (Branderi Barasinga) जाति के लिये भी संरक्षण हेतु इस रिजर्व को उपर्युक्त माना है, जो अभी तक केवल 'कान्हा' टाइगर रिजर्व तक सीमित था। प्राकृतिक संपदा मे सागवान, अमलतास, आवॅला, आंचन, अर्जुन, बहेड़ा, तेन्दू, पलास और टिन्सा तथा बांस के बड़े–बड़े पेड़ हैं। अतः शाकाहारी जीवों को पर्याप्त आहार सुविधा उपलब्ध है।

अन्य वन्य पशुओं मे चीतल (Chital), सांभर (Sambar), नील गाय (Blue Bull), काला मांड (Blck Bull), चौसिंगा (Chousinga), चिकारा (Chinkara), जंगली सुअर (Wild Pig), भालू (Sloth Bear), गौर (Gaur), तथा विभिन्न प्रजातियों के हिरन सम्मिलित हैं।

६. कालकद–मुण्डनथुरई (तमिलनाडु):–

देश के दक्षिण मे यह आखिरी छोर का टाइगर रिजर्व है जो तमिलनाडु प्रदेश की दो कलाकड तथा मुण्डनथुरई के मध्य स्थित है। देश के पश्चिमी समुद्र तट तथा दक्षिण भारत की मिश्रित आर्द्र तथा शुष्क जलवायु पर आधारित सदाबहार तथा घने बनों वाला यह वन्य अभयारण्य कई विविधता लिये हुये है। जिसमे वन्य जीवों की ही विविधता प्रमुख है।

मांसाहारी वन्य पशुओं मे बाघ (Tiger), तेंन्दुआ (Leoparrd), जंगली बिलाव (Civet), लकड़बग्घा (Hyuena), गीदड़ (Jackal), आदि तथा शाकाहारी जंतुओं मे हाथी (Rlrpjsnt), कई प्रकार के वानर (Different type of Macaques), गौर (Gaur), सांभर (Sambar), नीलगिरी ताहर (Nilgiri Tahr), जलमुर्गी (Wawaer Birds), तीतर (Partridges), बटेर (Quail), फुदकी (Warbeer), सहेली (Minivet), छपका (Nightjar) आदि मिलते हैं।

सुरक्षा व्यवस्था और व्यवस्थित करने, मवेशी चराई रोंकने, लोगों की व्यक्तिगत संपत्तियों के झगड़े समाप्त करनें आदि पर प्रशासन का प्रयास है। भविष्य की योजनाओं मे इस टाइगर रिजर्व के स्तर को 'राष्ट्रीय उद्यान' मे परिवर्तित कराना मुख्य लक्ष्य है।

७. कान्हा (म०प्र०):-

देश का सर्वाधिक चर्चित 'कान्हा' राष्टीय पार्क का विगत ५०-६० बर्षों का इतिहास कई उतार-चढ़ाव लिये है। १६३३ मे निर्मित वन अभयारण्य का स्तर जब १६५५ मे राष्टीय पार्क के रूप मे परिवर्तित हुआ तब इसके कोर क्षेत्र का क्षेत्रफल केवल ३१८ वर्ग किमी. था उस पर भी पड़ोसी गांवों के लोगों का अतिक्रमण, बलपूर्वक मवेशी चराई, ईंधन के रूप मे वन क्षेत्रों का ह्रास सभी इस क्षेत्र की प्रगति के बाधक बने। लेकिन शनैः शनैः स्थितियों को संभाल कर इसे 'प्रोजेक्ट टाइगर' क्षेत्र मे ले लिया। विरासत मे मिली प्राकृतिक संपदाओं ने इसे पुनः ऐसे घने, आकर्षक और दर्शनीय स्थल के रूप मे ला दिया जिससे इसे देश का श्रेष्ठ उद्यानों मे गिना जा सकता है।

अब चीतल (Chital), बारासिंगा (Barasonga), सांभर (Sambar), गौर (Gaur) और जंगली सुअर (Wild Pig), की बहुतायत है। १६७५ मे बारासिंगा की ६६ की संख्या का वर्तमान मे ५०० के लगभग हो जाना तथा १६७२ की बाघों की संख्या ४३ से १६६४ के प्रारंभ मे लगभग १५० तक हो जाना निश्चित ही प्रगति प्रदर्शित करता है।

८. मानस (असम):-

देश के उत्तर पश्चिम मे स्थित यह टाइगर रिजर्व असम का एक ऐसा वन्य जीव क्षेत्र है जिसका क्षेत्रफल (कोर क्षेत्र) बहुत कम है, पर बाघ (Tiger), गेंडा (Rhino), और हाथी जैसे महत्वपूर्ण पशुओं का आश्रय स्थल वन पूरे देश के लिये स्पर्धा का क्षेत्र बना हुआ है। इसका श्रेय वस्तुतः प्रकृति को ही है। भारी वर्षा, नदियों के साथ लाई मिट्टी, कंकड़- पत्थर से बने मैदानी क्षेत्र और पहाड़ी ढालू चट्टानें सभी ने मिलकर एक ऐसे परितंत्र को जन्म दिया है, जो वन्य जीवों के लिये अद्वितीय है। मानस नदी ने जन संपदा को जहां समृद्ध बनाया है वहीं जलाशयों की सदैव पूर्ति कर प्राथमिक आवश्यकता को पूरा किया है।

हाथी (elephant), गेंडे (Rhoneos), जंगली HkSals (Wild Buffaloes), गौर (Gaur), lkaHkj (Sambar), जंगली सूअर (Wild Pig), बाघ (Tiger), तेंन्दुआ (Leopard), हिरन (Swamp and Hog Deer), लंगूर (Capped and Golden Langur), भालू (Sloth Bear), घड़ियाल (Ghariyal), अजगर (Python) आदि अनेक पशु-पक्षी और जल-जीव इस क्षेत्र मे अच्छी संख्या मे हैं।

अवैध शिकारों की बदस्थिति तथा उपजाऊ भूमि का ग्रामीणों द्वारा निरंतर अतिक्रमण यहां की मुख्य समस्याएं हैं जिन्हें धीमे-धीमे नियंत्रित किया जा रहा है।

६. मेलाघाट (महाराष्ट्र):-

मेलघाट अभयारण्य पश्चिमी घाट (Werstern Ghats), की तलहटी मे है अतः मिश्रित प्रकार का कुछ भाग पहाड़ी और कुछ मैदानी है। पश्चिम मे सघन सागवान के जंगल है। मानसून, शीत तथा ग्रीष्मकाल मे ऋतुओं के साथ-साथ वनस्पति मे परिवर्तन आ जाता है। जिससे प्राकृतिक स्थितियों मे भी परिवर्तन निश्चित होता है। इसका प्रभाव वन्य जीवों पर भी पड़ता है। ताप्ती और पूर्णा नदियां यथेष्ट जल पूर्ति के साधन हैं।

गौर (Gaur), सांभर (Sambar), चिन्कारा (Chinkara), जंगली सूअर (Wild Pig) और हिरन (Barking Deer) की बहुतायत है। चीतल (Chital) और नीलगाय (Blue Bull) अल्प संख्या मे हैं। बाघ (Tiger), तेंदुआ (Leopaard), और वन बिलाव (Wild Dog) प्रमुख मांसाहारी वन्य पशु हैं।

भारी मवेशी चराई और वन अग्नि (Forest fire) मुख्य समस्याएं हैं जिनके लिये सभी प्रबंध किये गये है। बाघ परियोजना क्षेत्र मेलघाट की सफलता की पुष्टि इससे होती है कि पिछले वर्षों मे न केवल बाघों की संख्या मे वृध्दि ही हुई है बल्कि उनके अवैध शिकार पर कड़ाई से रोक लगी है।

१०. नागार्जुन (आंध्रप्रदेश)– Nagarjunsagar (Andhra Pradesh):-

देश के दक्षिण मध्य मे स्थित यह टाइगर रिजर्व कृष्णा नदी के प्रवाह क्षेत्र (Catchment area) मे आता है। मध्य और पश्चिमी भाग पठारी है। शेष भाग घुमावदान घाटियों तथा नदी के साथ लाये कंकड़ पत्थर आदि के संग्रह से ऊबड़ खाबड़ है, लेकिन जल की प्रचुरता और परितंत्र की अनुकूलता से वन्य जीवों को सुरक्षा है। कृष्णा नदी पर बनें बांध 'नागार्जुनसागर' के नाम पर ही इस रिजर्व का नाम पड़ा है।

वन्य पशुओं मे बाघ (Tiger), तेंदुआ (Leopard), लकड़बग्घा (Dstripped Hyena), भालू (Sloth Bear), जंगली बिलाव (Civet), उदविलाब (Indian Otter), नील गाय (Blue Bull), चिन्कारा (Chinkara), चौंसिंगा (Chausinga), सांभर (Sambar), चीतल (Chital), जंगली सुअर आदि सम्मिलित है। कई किस्म के लंगूर हैं। इण्डियन पेन्गोलिन अब लुप्त प्रायः स्थिति मे है। सर्वे के आधार पर लगभग १२५ प्रकार की स्थानीय तथा प्रवासी पक्षी प्रजातियां यहां उपलब्ध होती है।

समान रूप से बाहरी ग्रामीण निवासियों के भूमि अतिक्रमण हस्तक्षेप से तथा वन उत्पाद विक्रय से इस रिजर्व की प्रगति मे बाधाएं आई हैं जिन्हें सुलझाया जा रहा है। कोर क्षेत्र मे और प्रतिबंध लगाये जा रहे हैं तथा आधुनिकतम संचार व्यवस्था से वन्य जीवों की देखरेख व नियंत्रण किया जा रहा है।

११. नामदाफा (अरूणाचल प्रदेश):-

नामदफा राष्टीय पार्क मे वन्य पशुओं की विविधता है जो यहां के विविधतापूर्ण परितंत्र मे सीधे संबंधित हैं। हिमालय की समुद्रतल से २०० मीटर से ४५०० मीटर तक की उंचाई वाले पहाड़ी और मैदानी क्षेत्र मे बना यह रिजर्व अनेक प्रकार की वनस्पति तथा अन्य वन संपदा संजोये है। पानी के अनगिनत संग्रह स्थल हैं और नदियों का अनवरत पानी इस क्षेत्र मे होकर ब्रम्हपुत्र मे जा मिलता है।

संभवतः देश का यही एक ऐसा राष्टीय पार्क है जहां बाघ, तेंदुआ, हिमचीता, और बादली चीता की प्रजातियां एक साथ मिलती हैं। अन्य वन्य पशुओं मे हाथी, जंगली सुअर, सेही, गौर, जंगली भैंसा, हिरन, जंगली बकरा तथ अनेक पक्षियों की प्रजातियां मिलती हैं।

यद्यपि इस रिजर्व की पहुंच बहुत आसान नही है अतः कई मायनें मे यह क्षेत्र काफी सुरक्षित है। पर तब भी भूमि अतिक्रमण की स्थिति मे निपटना यहां की प्रमुख समस्या है। जिस पर व्यवस्थित योजना से प्रयास किया जा रहा है।

१२. पलामू (बिहार):-

'पलामू' टाइगर रिजर्व बिहार प्रान्त मे स्थित है। जहाँ की अपेक्षाकृत शुष्क जलवायु से क्षेत्र मे उतनी सघनता वृक्षों की नही है जितनी एक राष्ट्रीय पार्क के नाम से आशा की जाती हैं। अधिकतर जंगल मे साल व बांस लगे हैं। अधिकतर उत्पाद संरक्षित होने के बजाय मानव की लालच का शिकार बन कर नष्ट हो जाते हैं। और इसी से इस क्षेत्र की पारिस्थितिकी न तो संतुलित है और न ही इसकी प्रगति दृष्टिगत है। कोल नदी तथा उसकी सहायक नदियाँ केवल पानी का स्त्रोत है, जो पर्याप्त नही है और गर्मियों मे जल अभाव हो जाता है। जल की तलाश मे वन्य जीव रिजर्व मे ही स्थान बदलते रहते हैं। १३०० मिमी की वर्षा ऐसे अधिक ताप वाले क्षेत्र के लिये पर्याप्त नही है।

इसके बावजूद विगत अनेक वर्षों से चले आ रहे विविधापूर्ण परितंत्र से अनेक प्रकार के वन्य पशु यहाँ बसते हैं। हाथी, चीतल, सांभर, लघु पुच्छ बंदर, लंगूर, खरगोश, सेही, गौर, नील गाय, हिरन, ढोल, जंगल सुअर, बाघ, तेंन्दुआ, भेड़िया, गीदड़, लकड़बग्घा इसमे सम्मिलित हैं। लगभग १००० पक्षी प्रजातियाँ मिलती है। तीतर, अनेक प्रकार के मुर्ग बहुतायत मे हैं।

अनेक व्यवस्थाओं के साथ पानी की नियमित व्यवस्था तथा वन क्षेत्र का सघन वनीकरण पर अधिक ध्यान केन्द्रित है।

१३. पेरियार (केरल):-

पश्चिमी घाट मे पेरियार नदी के नाम पर नामकरण हुये 'पेरियार' टाइगर रिजर्व का पूरा परितंत्र विशेषतः जल पर आधारित है। वर्षों से छोटे-छोटे प्राकृतिक रूप से बने द्वीप कृत्रिम झील के अंदर एक ऐसा स्थलीय, जलीय और भूगर्भीय पारिस्थितिकी तन्त्र का निर्माण करते हैं जिससे क्षेत्र मे दर्शकों को तो आकर्षण होता ही है बल्कि एक साथ ही वन्य एवं अन्य जीवों को भी समुचित आश्रय प्रदान करते हैं। वन संपदा की दृष्टि से कुछ भाग बहुत सघन तथा सदा हरियाली वाले हैं, कुछ भागों मे आंशिकी हरियाली है तथा कुछ सूखे भी है। वन्य पशु मे हाथी, गौर तथा हिरन उल्लेखनीय है। जल क्षेत्र के पास लंगूर सांभर, हिरन, जंगली सुअर, सेही बाघ, तेंन्दुआ, और ढोल मिल जाते हैं। जलीय जीवों मे इंडियन डार्टर, जल कौआ, क्रोंच आदि प्रमुख है।

टाइगर रिजर्व की स्थितियां सामान्यतया संतोषप्रद है तथापि चराई रोकने, टूरिस्ट के दबाव को नियंत्रित करने तथा अवैध शिकार रोकना प्रगति के लिये आवश्यक एवं उचित प्रतीत होते हैं।

१४. रणथम्बोर (राजस्थान):-

राजस्थान के विशाल रेगिस्तानी एवं वीरान क्षेत्र मे रणथम्भोर राष्टीय पार्क सचमुच प्रकृति का एक करिश्मा है और इसे रेगिस्तान मे मरूस्थल की संज्ञा दी जा सकती है। अरावली और विन्ध्यालच पर्वत श्रेणी के मिलन स्थल पर निर्मित इस रिजर्व का परितंत्र इतना संतुलित एवं व्यवस्थित है कि पूरे वर्ष पर्यन्त न तो जीवों को कोई भोजन का अभाव रहता है और न ही पानी

का। पानी की पूर्ति प्रकृति के अलावा कृत्रिम रूप से बनाये गये जलाशयों को कुंओं से भरकर कर ली जाती है। यह एक सघन पहाड़ी जंगलों तथा उसके चारों ओर विशाल वीरानें क्षेत्र के बीच व्यवस्थित परितंत्र के अद्वितीय मिसाल है। जिसमे वन्य जीवों ने भी विकृत पर्यावरण के साथ अपने आपको समाहित तथा समायोजित कर लिया।

दोनो ही श्रेणी शाकाहारी और मांसाहारी पशुओं मे सांभर, चीतल, नीलगाय, जंगली सुअर, और चिंकारा तथा बाघ और तेंन्दुआ है। भालू, अजगर, गेंहुंवन सांप और मगर भी पाये जाते हैं। अनेक प्रकार के पक्षी भी मिलते हैं जिनमे तीतर, बटेर, जल मुर्ग, बत्तख, सुग्गा और बगुला आदि उल्लेखनीय है।

गर्मियों मे पानी का अभाव तथा निकटस्थ ग्रामीणों का उद्यान क्षेत्र मे अतिक्रमण नियमित एवं सामान्य बात है। पानी का समुचित प्रबंध हुआ है। अतिक्रमण रोकने हेतु प्रशासन सजग है।

१५. सरिस्का (राजस्थान):-

राजस्थान प्रदेश मे ही 'सरिस्का' टाइगर रिजर्व पुनः रेगिस्तानी क्षेत्र मे अपनी स्वतंत्र एकल अद्वितीय पारिस्थितिकी पर टिका है। पूरा क्षेत्र पहाड़ी है तथा मध्य मे दो छोटे भाग पठारी है, जिन्हें 'कंकवारी और 'किरास्का' के नाम से पुकारते हैं। पूरे क्षेत्र के वन क्षेत्र बहुत घने नही है पर शाकाहारी जीवो के लिये पर्याप्त भोजन उपलब्ध करा देते हैं जिन पर मांसाहारी वन्य जीव अविलंबित रहते है। पानी का अभाव कृत्रिम रूप से जलाशयों को कुएं से भर कर दूर किया जाता है। वर्षा ६५० मिमी वार्षिक औसत भी पर्याप्त नही है।

यहां पर वन्य पशुओं मे सांभर, चीतल, नीलगाय, लकड़बग्घा, गीदड़, लंगूर, स्याह गोश तथा बिज्जू मुख्य हैं। अन्य जीवों मे लहटोरा, सुग्गा, तीतर और मोर आदि सम्मिलित हैं।

राष्ट्रीय उद्यान को संरक्षित रखनें के लिये अनेक प्रकार के नियमों उपनियमों का कठोरता से पालन किया जाता है क्योंकि यह एक ऐसा क्षेत्र है कि जहां के वन्य जीवों का अपना जीवन भी उद्यान के तन्त्र पर आश्चर्यजनक रूप से आधारित है।

१६. सिमलीपाल (उड़ीसा):-

'सिमलीपाल' उड़ीसा प्रान्त मे प्रकृति का एक अद्भुत स्थान है। जहाँ ढालू पहाड़ियाँ सघन वनस्पति क्षेत्रों से अधारित घाटियाँ, उपजाऊ भूमि पहाड़ियों से निकलते झरने, बारहमासी नदियां और आकर्षक नयनाभिराम नीला आकाश सभी कुछ अद्वितीय है। २५०० मिमि वार्षिक वर्षा से पूरा वातावरण नम व आर्द्रता लिये है। अधिकतर क्षेत्र हरा भरा है। ऋतु परिवर्तन के साथ कुछ भागों मे शुष्कता आती है पर पूरा तंत्र उसे स्वीकार कर लेता है।

यह राष्ट्रीय उद्यान बाघों के अतिरिक्त हाथियों के लिये प्रसिद्ध है। अन्य वन्य पशुओं और जीवों में बाघ, तेंन्दुआ, ढोल, सांभर, मुन्जटैक, गौर, जंगली सूअर, चीतल, चौंसिंगा, पेन्गोलिन, लंगूर, मोर, लकड़बग्घा, गीदड़ और गिद्ध उल्लेखनीय है।

अवैध शिकार से रोक, वन-आग पर नियंत्रण तथा कोर क्षेत्र से ग्रामीणों का निष्कासन कठिन समस्याएं है, जिन पर ध्यान अपेक्षित है।

१७. सुंदर वन (पश्चिमी बंगाल):-

'सुन्दरबन' देश का एकमात्र कच्छ वनस्पति के परितंत्र का प्रतिनिधित्व करता है। वहीं सभी टाइगर रिजर्व के अधिक संख्या मे बाघों का संरक्षण भी इसी क्षेत्र मे होता है। यह गंगा और ब्रम्हपुत्र के मिलन स्थल पर स्थित है तथा उन्हीं की स्थिति के अनुसार संचालित है। मछलियों के प्रजनन का यह एक प्रमुख स्थल है और इसकी संकरी खाड़ियां तथा समुद्री तट मछलियों के अच्छे संरक्षण मे सहयोग करते हैं।

वन्य पशुओं मे बाघ, चीतल, जंगली सुअर, लघु पुच्छ बंदर प्रमुख है। जलजीवों मे मगरमच्छ यहां की थाती है।

१८. वाल्मीकि (बिहार):-

गंडक नदी के सहारे प्राकृतिक साल के वनों से परिपूर्ण यह टाइगर रिजर्व नेपाल के 'रायल चितवन' राष्टीय उद्यान के दक्षिण मे स्थित है। हरे-भरे क्षेत्र वाले इस रिजर्व के घने बेंत के बृक्षों की भरमार है जो यहां के बाघों के अच्छे आश्रय स्थल बनते हैं।

वन्य पशुओं मे विविध प्रकार के हिरन, सांभर, जंगली सुअर, भालू, चौंसिंगा, नीलगाय, गौर, लकड़बग्घा, तेंन्दुआ, जंगली कुत्ता अथवा ढोल, लंगूर, आदि मिलते हैं। पक्षियों मे मोर विभिन्न प्रकार के मुर्ग, तीतर, प्रवासी बतखें सम्मिलित हैं। रेंगने वाले जीवों मे घड़ियाल, अजगर, सांप और कछुआ प्रमुख है।

इस टाइगर रिजर्व मे प्रशासन को बहुत अपेक्षायें है, लेकिन वहीं चराई की समस्या, वन अग्नि तथा लोगों के अनाधिकृत प्रवेश से यह अभी स्वतंत्र नही है। समस्याओं का सामाधान राष्ट्रीय स्तर पर किया जा रहा है।

१९. पेंच (म०प्र०):-

सत्र १९९२-९३ मे यह बाघ रिजर्व पूर्व घोषित राष्टीय उद्यान पेंच मे ही बना है। म.प्र. का यह तीसरा टाइगर रिजर्व क्षेत्र है। इससे पूर्व 'कान्हा' तथा 'इन्द्रावती' क्रमशः १९७३-७४ तथा १९८२-८३ मे बने थे। इसकी संपूर्ण भौगोलिक स्थिति, कोर क्षेत्र, बफर क्षेत्र तथा वहां की वानिकी और वन्य जीव विवरण की पूरी जानकारी अधिकृत रूप से अभी अपेक्षित है।

२०. तडोबा- अंधेरी (महाराष्ट्र):-

२१. बान्धवगढ़ (म०प्र०):-

उपर्युक्त दोनों टाइगर रिजर्व पिछले वर्ष १९९३-९४ मे ही बने हैं। बांधवगढ़ पूर्व मे ही राष्टीय उद्यान था जबकि 'तदोबा' राष्टीय उद्यान तथा अंधेरी वन अभयारण्य को मिलाकर टाइगर रिजर्व 'तदोबा अंधेरी' बनाया है। पूरा अधिकृत विवरण शीघ्र अपेक्षित है।

यह सभी बाघ रिजर्व साधन सुविधा, नियंत्रण क्षमता तथा प्रस्तावित योजनानुसार अलग-अलग वर्षो में स्थापित किये गये। उनका वर्षवार स्थापना, विवरण एवं विस्तार आदि की जानकारी अग्रांकित तालिका में समेकित है।

सारणी–२ बाघ परियोजना के रिजर्ब्स का विवरण

क्र.सं.	बाघ रिजर्व का नाम	संबंधित प्रदेश	क्षेत्र (वर्ग किमी. में)			स्थापित वर्ष
१	बाँदीपुर	कर्नाटक	523	343	866	1973&74
२	कार्बेट	उत्तरप्रदेश	338	798	1134	1973&74
३	कान्हा	मध्यप्रदेश	940	1005	1945	1973&74
४	मानस	असम	470	2370	2840	1973&74
५	मेलघाट	महाराष्ट्र	308	1229	1597	1973&74
६	पलामू	बिहार	213	715	928	1973&74
७	रणथम्भोर	राजस्थान	392	782	1174	1973&74
८	सिमिलीपाल	उडीसा	845	1905	2750	1973&74
६	सुन्दरवन	पं.बंगाल	1330	1255	2585	1973&74
१०	पेरियार	केरल	350	427	777	1978&79
११	सरिस्का	राजस्थान	498	302	800	1978&79
१२	बक्सा	पं.बंगाल	115	444	759	1982&83
१३	इन्द्रावती	म०प्र०	1258	1541	2799	1982&83
१४	नागार्जुनसारग	आन्ध्र प्रदेश	1200	2369	3568	1982&83
१५	नामदफा	अरुणांचल प्रदेश	1808	177	1985	1982&83
१६	दुधुवा	उ०प्र०	648	163	811	1978&88
१७	कलाकडमुण्डनथुरई	तमिलनाडु	571	229	800	1988&89
१८	बाल्मीकि	बिहार	336	504	840	1998&90
१६	पेन्च	म०प्र०	293	465	758	1992&93
२०	तडोबा- अन्धेरी	महाराष्ट्र	381	400	781	1993&94
२१	बान्धवगढ़	म०प्र०				1993&94
	योग		**13,017**	**17,480**	**30,497**	

प्रधानमंत्री जी की अध्यक्षता में एक संचालन समिति बाघ रिजर्वों के सबन्ध के बारे में दिशा–निर्देश देती है। संचालन समिति (बाघ रिजर्व) के गैर सरकारी सदस्य तथा संचालन समिति (बाघ रिजर्व) द्वारा नामित चार वैज्ञानिक संस्थाऐं बाघ परियोजना की अर्द्ध–वार्षिक समीक्षा करती है।

परियोजना के अनावर्तक व्यय के लिये प्रतिवर्ष लगभग १७५–२०० लाख रु. की राशि भारत सरकार द्वारा विभिन्न बाघ रिजर्वों के नव–निर्माण कार्य, पीने के पानी के जलाशय, रख–रखाव व मरम्मत कार्यों के लिये उपलब्ध कराती है। इसके अतिरिक्त आवर्तक व्यय हेतु भारत सरकार तथा राज्य सरकार का योगदान ५०–५० प्रतिशत होता है। यह राशि प्रतिवर्ष भारत सरकार द्वारा लगभग ६–७ करोड़ रुपये होती है जो योजना के महत्व को प्रतिपादित करती है। इसके अतिरिक्त विशिष्ट समस्याओं के निराकरण, शोध–कार्यों तथा बाघ रिजर्वों के उत्थान के लिये विशेष धन राशि भी उपलब्ध कराई जाती है।

आज बाघ रिजर्वों को देखने का शौक अन्य भ्रमण के साथ साथ लोगों में निरन्तर बढ़ रहा है। राज्य सरकारों ने भी अपने अपने प्रदेशों में इन तक पहुचंने के साधन, ठहरने के लिये विश्रामगृह तथा देखने के लिये प्रशिक्षित गाइड्स की उचित व्यवस्था की है जिससे वन्य जीवों की सुरक्षा भी हुई है और देश के लोगों में इन वन्य प्राणियों के प्रति व्यवहार में परिवर्तन भी आया है,

क्योंकि वह रिजर्व्स केवल बाघों का ही संरक्षण नहीं करते बल्कि उन स्थानों पर पाये जाने वाले अनेक अन्य वन्य जीवों की भरी सुरक्षा करते हैं, अतः इनकी देखरेख कई आधारों पर की जाती है।

६.२ गिर सिंह परियोजना

गिर वन एशियाई सिंह, पेन्थेरा लिओन परसिका (Panthera leon persica) का केवल अद्वितीय जीवित आवास है जो गुजरात के सोराष्ट्र प्रायद्वीप में स्थित है। गुजरात की सरकार ने इस परियोजना के लिये १६७२ में पाँच वर्षीय योजना बनाई। गिर अभयारण्य का कुल क्षेत्रफ़ल अब १४१२.१२ वर्ग किमी हैं। १६७८ में ११८.१३ वर्ग किमी का अतिरिक्त क्षेत्रफ़ल राष्ट्रीय उद्याान घोषित किया गया है।

६.३ राइनोस संरक्षण

१६८७ में असम में राइनों का संरक्षण "केन्द्रीय प्रायोजक योजना प्रारम्भ की गयी और यह योजना राइनों आवास के प्रभावी और अत्यधिक प्रबंध के लिये शुरु की गयी है।

६.४ मगर जनन परियोजना

यह परियोजना मगरों की तेज़ी से कम होती जनसंख्या को ध्यान में रख कर बनायी गयी है भारत में मगर शिकार पर कानूनी प्रतिबंध भी है। इस परियोजना पर कार्य उडीसा में १.४.१६७५ को शुरु हुई है। भारत में मगर की तीन जातियाँ हैः-

(१) लवण जलीय या ज्वारनदमुखी (Estuarine) मगर क्रोक्रोडाइलस पोरोसस (Crocodilus porosus)

(२) अलवणजलीय, अनूप मगर या मगर क्रोक्रोडाइलस पैलुस्ट्रिस (Crocodilus palustrris)

(३) घड़ियाल (Gharial), गैविएलिस गैनेटिकम (Gravialis gangeticus)

अपने देश में आठ राज्यों (१६७५-१६७८) में कुल १६ मगर केन्द्र बनाये गये है। इस परियोजना के अन्तर्गत ११ अभयारण्य घोषित किये गये है जिनमें से दो देश के सबसे बड़े अभयारण्य है (कृष्णा अभयारण्य आंध्र प्रदेश में ३,६०० वर्ग किमी और चम्बल अभयारण्य, त्रि-राज्य अभयारण्य उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और राजस्थान, ५४०० वर्ग किमी में है।

६.५ हाथी परियोजना

इस योजना की शुरूआत १६६२ में इस उददेश्य के साथ हुयी कि जिसमें तेजी से कम हो रही हाथियों की जनसंख्या की गणना तथा हाथी के लुप्त और पतन हुये आवासों की मरम्मत, हाथियों के प्रवास और जनसंख्या गति के आधार पर आंकड़ो की स्थापना की गयी है।

अध्याय–०७

जीव मण्डलीय आरक्षण (Biosphere Reserves)

सन् १९७१ में यूनेस्को द्वारा 'मैन और बायोस्फियर प्रोग्राम' (MAB) के अन्तर्गत जीवमण्डलीय आरक्षण कार्यक्रम शुरू किया गया। इनके माध्यम से किसी भी स्थान की परिस्थितिगत विशेषताओं को सुरक्षित रखने के उपाय किये जा रहे है और इसके साथ ही साथ उस क्षेत्र के जीवमण्डल के जीन–स्रोतों का संरक्षण भी शामिल है।

यूनेस्को द्वारा विशेष अध्ययन दल गठित किया गया है जिसके द्वारा इन स्थलों में मानव के अत्यधिक हस्तक्षेप के कारण पडने वाले दुष्प्रभावों एवं प्रदूषण का गहन अध्ययन किया गया है।

अतः जीवमण्डलीय संरक्षण स्थल को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि ''जीवमण्डलीय संरक्षण स्थल एक सुनिश्चित स्थान होता है जहाँ भूमि में विभिन्न क्षेत्रों में बॉटकर प्रत्येक क्षेत्र को एक निश्चित गतिविधि के लिये सुरक्षित रखा जाता है।

इन्हें निम्नलिखित जोनो में बाँटा गया है:–

(१) भीतरी भाग **(Core Zone)–** यह क्षेत्र जीवमण्डल शरणस्थल का आन्तरिक भाग है जहाँ पर किसी भी तरह के मानव हस्तक्षेप की आज्ञा नहीं है। यह क्षेत्र कानूनी तौर पर संरक्षित होता है।

(२) प्रतिरोधक क्षेत्र **(Buffer Zone)–** यह क्षेत्र जीवमण्डल के आन्तरिक भाग के लिये एक प्रतिरोधक की तरह कार्य करता है जहॉ कुछ सीमित मात्रा में मानव गतिविधि की आज्ञा रहती है।

(३) सांक्रातिक क्षेत्र **(Transition Zone)–** इस क्षेत्र में मनुष्य कई तरह की गतिविधियाँ कर सकता है लेकिन स्थानिक परिस्थितियों एवं पर्यावरण के साथ छेड–छाड की आज्ञा नहीं होती।

जीवमण्डलीय आरक्षण के विशेष कार्य यह है कि यह चार मुख्य समूह के विकल्पी को जोडे (१) संरक्षण (२) अनुसंधान (३) शिक्षा और (४) स्थानीय सहयोग।

७.१ भारत के जीवमण्डल आरक्षण स्थल (Biosphere Reserve in India)

भारतवर्ष में प्रथम जीवमण्डल संरक्षण स्थल का निर्माण तथा नीलगिरी जीवमण्डल संरक्षण स्थल की स्थापना १९८६ में की गयी है। भारत में १५ जीवमण्डल संरक्षण स्थल है जिसकी स्थापना मई २००२ तक की जा चुकी थी। सारणी–३, चित्र–१२। नन्दा देवी जीवमण्डल संरक्षण की स्थापना १९८८ में की गयी है।

सारणी–३. भारत के जीवमण्डल आरक्षण स्थल

	जीवमण्डलीय आरक्षण	राज्य/संध प्रशासित क्षेत्र
१	नमदाफा	अरुणांचल प्रदेश
२	फूलो की धाटी	उत्तराचंल
३	मन्नार की खाडी	तमिलनाडु
४	सुन्दरवन	पं.बंगाल
५	थार मरुस्थल	राजस्थान
६	मानस	असम

७	छोटा कच्छ का रन	गुजरात
८	अण्डमान का उत्तरी द्वीप	अण्डमान आोर निकोबार
६	नन्दा देवी	उत्तराचंल
१	काजीरंगा	असम
११	कान्हा	म०प्र०
१२	नोकरेक	मेधालय
१३	नीलगिरी	कर्नाटक,केरल, तमिलनाडु

जीवमण्डलीय आरक्षण कार्यक्रम या बायोस्फियर रिजर्व प्रोग्राम के मुख्य उददेश्य निम्नवत है :-

(१) पारिस्थितिक तंत्र के प्रतिनिधियों के नमूना का संरक्षण प्रदान करना।

(२) मानव जाति के वर्तमान एवं भविष्य के लिये सुरक्षा के लिये इनकी अवधारणा अत्यन्त महत्व की है। पौधों और पशुओं की उनके कुदरती आवासों एवं पर्यावरण में सुरक्षित रखे जैव-विविधता की रक्षा करना क्योंकि उसी पर उनके लगातार विकास क्रम की आधार निर्भर करता है।

(३) शिक्षा और प्रशिक्षण के लिये अवसर प्रदान करना।

(४) अनुभवों तथा विचारों को चारों ओर प्रसारित करना जिससे प्रतिपालित विकास को बढावा मिले।

(५) अन्तर्राष्ट्रीय सहकारिता को बढावा।

(६) आर्थिक विकास में सहायक होना।

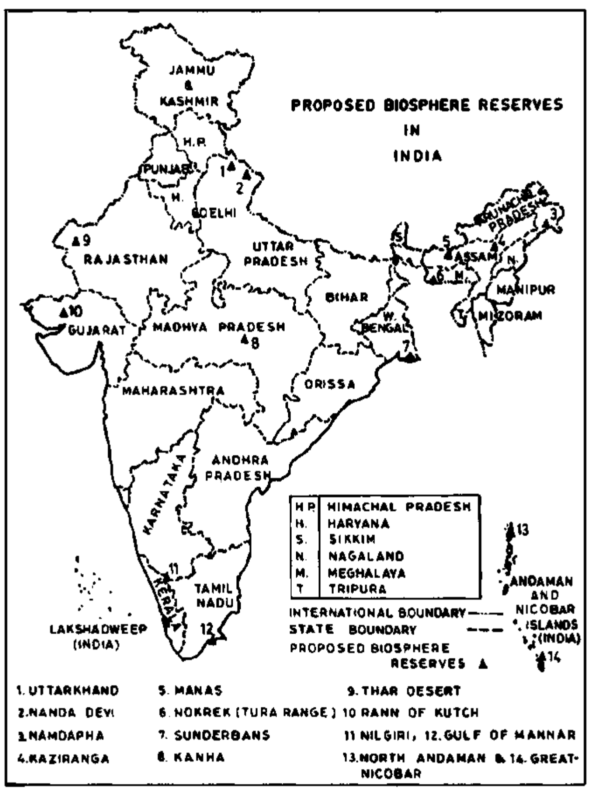

Fig. 12- Proposed Biosphere Reserves in India.

अध्याय–०८
वृक्षारोपण बनाम वृक्ष संरक्षण

किसी क्षेत्र के पारिस्थितिक संतुलन के लिये वन और वन्यजीव आवश्यक है। वन प्रायः वृक्षों, झाडियों, लाताओं एवं अन्योन्य पादपों के साथ जन्तुओं, मृदा, अवमृदा, वायुमण्डल एवं जल के पारस्परिक सम्बन्धों का अति जटिल परिस्थितिकी तन्त्र है। वन हमारे पर्यावरण और अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण घटक है। वन हमें विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं (मृदा अपरदन, भूस्खलन, वायु वेग को) तथा वायु प्रदुषण आदि को नियंत्रित करते है। वन शब्द के विभिन्न अर्थ है। पेड–पौधों द्वारा सघन आच्छादित विस्तृत स्थानीय क्षेत्र ''वन'' कहलाते है। वन प्रत्येक देश की अमूल्य निधि है।

वनों के अन्तर्गत सभी प्रकार के जंगल के क्षेत्र आते है जैसे–प्राकृतिक, कृत्रिम रूप से सुरक्षित एवं असुरक्षित वन। मानव जाति ने वन संशाधनों का अनेक तरह से प्रयोग किया जैसे–भोजन, ईधन, इमारती लकडी, कागज, अन्य उपयोगी वस्तुये (कपूर, कई तरह के तेल, गोद, रीठा, शहद, मोम, रेशम, लाख, कई तरह की दवाइयाँ, मसाले इत्यादि) पर्यावरण संरक्षण, ऑक्सीजन (जो कि प्राणियों के साँस लेने की प्रक्रिया में सहायक) प्रदान करना, ये कई प्रकार के पशु–पक्षियों को आश्रय प्रदान करते है। भू–संरक्षण, इनके नीचे गिरे पत्ते सड़कर भूमि उर्वरता में सहायक होते है तथा सुन्दर पेड़ पौधे, और उनके फूल हमेशा से ही कवियों एवं कलाकारों को प्रेरणा प्रदान कर उनकी कलात्मक रूचियों में वृद्धि करते रहे है।

सन्तुलित पर्यावरण के लिये मैदानी भाग में एक तिहाई भाग (३३%) पर वन क्षेत्र तथा पहाडी क्षेत्र में कम से कम ६६ प्रतिशत भूमि पर वन क्षेत्र आवश्यक माना गया है लेकिन भारत में सिर्फ १६.३६ प्रतिशत भूमि पर ही वन क्षेत्र है।

वन आवरणः–

ब्रिबेकर (Wrewbaker 1984) के अनुसार १६०० में वन का कुल क्षेत्र लगभग ७००० मेगा हेक्टेअर था। १६७५ में यह घटकर २८६० हेक्टेअर हो गया और यदि यह इसी प्रकार घटता रहा तो २००० में यह केवल २३७० हेक्टेअर रह जायेगा।

वनों की उपयोगिता तथा वनों के हो रहे विनाश को नजर में रखते हुये वन संरक्षण की आवश्यकता आज के समय में एक महत्वपूर्ण विषय बन चुका है यही कारण है कि वन–विज्ञान वनारोपण तथा वन प्रबन्धन इत्यादि विषयों को पर्याप्त महत्व दिया जाने लगा है।

वन संरक्षण से सम्बन्धित महत्वपूर्ण बाते है जो निम्नलिखित हैः–

१– वन उपज की माँगों को कम करना जिससे वनों की आवश्यकता कम पड़े।

२– वनों को काटने वाले को कडी से कडी सजा देने वाला कठोर नियम बनाना।

३– अपरम्परागत ऊर्जा के स्रोतों का विकास करना।

४– ईधन प्राप्ति के लिए लकडी के अधिक उत्पादन के लिए शीघ्र वृद्धिशील वृक्ष प्रजातियों की खोज तथा उनका रोपण।

५– नई और उन्नत प्रजातियों को प्राप्त करने के लिये जीन बैंक की स्थापना एवं विकास।

६– जंगलों की आग की रोकथाम की प्रक्रिया से वनों को कम नुकसान पहुँचे ऐसी योजनायें बनाना।

७– कृषि के लिये अनुपयुक्त भूमि में वृक्षारोपण करना।

८– स्वावलम्बी (Sustainable) वन प्रबन्धन करना। यह अवधारणा बनाकर रखना कि यदि हमने अपने कार्य में जितने पौधे प्राप्त किये उतने ही का हम वृक्षारोपण कर दे ताकि प्राकृतिक सन्तुलन बना रहे।

६– कृषि वानिकी को बढावा देना, जिसके अन्तर्गत कृषि क्षेत्रों में फसलों के साथ–साथ पेड़ो तथा झाडियों को उगाया जाता है। जिससे वनों पर ईधन के दबाव में कमी आयेगी और वृक्षों की सूखी पत्तियों से ह्यूमस एवं आर्द्रता भूमि को मिलती है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति में वृद्धि होती है।

१०– सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन प्रदान करना जिससे कृषकों एवं ग्रामीण जनता की वानिकी के ऐसे कार्यक्रमों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है जो उन्ही की आवश्यकता को ध्यान में रखकर बनाये जाते है। सामाजिक वानिकी में गृहोपयोगी वृक्ष अधिक उगाये जाते है। गुजरात एवं पश्चिमी बंगाल में सामाजिक वानिकी के ऐसे कार्यक्रम सफल रहे है। जिससे वनों की सीमा के निकट के क्षेत्रों में वृक्ष लगाये जाते है तथा कई लोगों को रोजगार उपलब्ध होता है।

११– वन विकास कार्यक्रमों को सफल बनाया जाये जो निम्न प्रकार से हो सकता हैः– (१) वृक्षारोपण द्वारा वन क्षेत्र विस्तार (२) वन संरक्षण (३) उत्पादकता बढ़ाना (४) क्षेत्रीय वन संवर्धन

१२– बहुत सी जातियों के पेड यदि आधार पर तनों का कुछ भाग छोडकर काटे जाये तो उनसे पुनः शाखायें, प्रशाखाये निकल आती है। इस प्रणाली को कॉपी प्रणाली कहते है।

यदि वन संरक्षण की बात की जाये तो हम चिपको आन्दोलन को कैसे भूल सकते है जो सामाजिक सहायता का एक सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है जो उत्तर प्रदेश (जो कि आज उत्तराखण्ड में है) में विश्नोई औरतों द्वारा किया गया था।

चिपको आन्दोलनः–

अनपढ़ जनजातीय महिलाओं ने यह आन्दोलन दिसम्बर १६७२ में प्रारम्भ किया जो चिपको (अर्थ है आलिंगन) आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह आन्दोलन उत्तराखण्ड के टिहरी गढवाल जिले में प्रारम्भ हुआ जो १६७८ में सही संवेग इकटठा किया जब महिलाओं ने पुलिस की गोलियों का सामना किया। टिहरी गढवाल में अडवानी गॉव की महिलाओ ने पेडों के इर्द गिर्द पवित्र धागा बॉधा, पेडों को गले (चिपको) लगाया। श्री बहुगुणा ने हिमालय में पेड गिराने को रोक द्वारा मृदा और जल के रक्षण के लिये इस आन्दोलन की योजना को जून १६८२ में लंदन में हुयी। यू०एन०ई०पी० बैठक में प्रस्तुत किया। वन में खडा प्रत्येक पेड एक चौकीदार की तरह है जो ऐवेलांश और भूस्खलन से हमारी रक्षा करता है। हमारी मृदा को बचाने तथा जल के संरक्षण के लिये सहायक है।

वास्तव में चिपको योजना रोपण का नारा है जिसमे भोजन, चारा, ईधन, रेशा और उर्वरक पेड समुदायों को अपनी सभी आवश्यकताओं में आत्मनिर्भर करने हेतु इसे विकेन्द्रीकृत स्वपुनः स्थायी और दीर्घकाली समृद्धि उत्पन्न करना चाहिये। यह पर्यावरण की रक्षा करता है।

देश के अन्य भागों में जनजातियाँ इस आन्दोलन से प्रेरित हुयी और पेडों के विनाश के विरूद्ध आवाज उठायी। चिपको कर्नाटक में अप्पीको (Appi ko) के रूप में पहुँचा।

अध्याय–०६
जल प्रबंधन के सरल उपाय

पारिस्थितिक तन्त्र का जल एक महत्वपूर्ण घटक एवं संशाधन है। वायु की तरह जल भी पृथ्वी पर जीवन के लिए एक अतिआवश्यक तत्व है। जल हमारे गृह पृथ्वी के तीन चौथाई भाग को घेरता है और पृथ्वी पर वर्तमान सभी जीवधारियों के शरीर में ६० से ७० प्रतिशत भार का भाग है। हमारे देश में जल का महत्वपूर्ण उपयोग सिचाई के लिये होता है इसके अलावा जल की औद्योगिक और घरेलू उपभोग के लिये अधिक मात्रा में भी आवश्यकता होती है।

जल पूरी पृथ्वी का ७/१०वाँ भाग है जो आयतन की दृष्टि से १४०० मिलियन घन किमी० है। पृथ्वी पर पूरे पानी की ६७ प्रतिशत मात्रा महासागर तथा समुद्रों में एवं मात्र ३ प्रतिशत मात्रा अन्य श्रोतों में पायी जाती है। तीन प्रतिशत मात्रा में से २.१५ प्रतिशत ग्लेशियर्स तथा ध्रुवों पर पायी जाती है। अतः लगभग मात्र ०.८५ प्रतिशत जल ही पीने के लिये उपलब्ध है।

विश्व में बढती हुयी जनसंख्या तथा उद्योग–धन्धों एवं कृषि कार्यो हेतु जल की माँग बहुत अधिक बढती जा रही है जबकि जल भण्डार सीमित है। अपने देश में जल के सम्भावित अभाव के विभिन्न कारण है जैसे– जनसंख्या में होती वृद्धि, पानी का अधिक उपयोग, पानी का असमान वितरण, बडे–बडे बाँधों तथा एनीकटों का निर्माण, वर्षा जल का संचय न करना, जल प्रदूषण जिसके कारण पीने के पानी के संचय स्थलों में जब उद्योगों अथवा घरेलू अपशिष्टों की अशुद्धियां मिल जाती है तो ऐसे स्थलों के पानी का उपयोग बन्द हो जाता है जिससे ऐसे क्षेत्रों में पीने के पानी का अभाव हो जाता है तथा सिचाई एवं घरेलू उपयोग हेतु जल की अधिक माँग आदि। जल में घुले प्रदूषकों से जल स्रोतों का फ्लोरा तथा फोना समाप्त हो रहा है। साथ ही जलीय पौधों एवं जन्तुओं के अस्तित्व का खतरा बना हुआ है। साथ ही हमारे देश की सभी बडी १४ नदियाँ भी प्रदूषित हो चुकी है। गंगा, यमुना, गोदावरी, कावेरी, नर्मदा और ताप्ती प्रदूषण का सामना कर रही है। हमारे देश की कई झीले जिसमें से एक डल झील भी शामिल है बिल्कुल अदीप्त हो चुकी है। दूषित गंध से अत्याधिक सूक्ष्म जीव बढ़ चुके है तथा शैवालों की वृद्धि रूक चुकी है।

६.१ जल समस्या समाधान हेतु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयास

पेयजल एवं जल प्रदूषण रोकने हेतु प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन, १६७७ का आयोजन किया गया, जिसमें प्रमुख निर्णय लिये गये जो निम्नवत है–

(१) प्रत्येक धनाढ़य व निर्धन व्यक्ति को जो किसी भी रंग व जाति का हो अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये समुचित मात्रा में स्वच्छ पेयजल प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिये।

(२) संयुक्त राष्ट्र के सभी सदस्य देशों से अनुरोध किया जाता है कि इस सम्बन्ध में कार्यक्रम बनाये कि किस प्रकार सन १६६० तक ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्रों में स्वच्छ जल सुलभ करा पाना सम्भव कर सकेगें।

२२ मार्च २००२ को World Water Day ‘समस्त विश्व में मनया गया। भारतवर्ष में १६८६ में राष्ट्रीय मिशन प्रारम्भ किया जिसमें १६६१ तक देश की सारी आबादी को पीने का जल उपलब्ध कराने का संकल्प लिया गया। जल सम्पदा प्रबन्ध में निश्चित रूप से केन्द्रीय और संगत राज्य संगठन जुडे हुये है इनमें से कुछ निम्न है :–

१- केन्द्रीय जल आयोग

२- केन्द्रीय भूजल बोर्ड

३- भारतीय मौसम विज्ञान विभाग

४- केन्द्रीय प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड

५- कृषि का मंत्रिमण्डल और आई०सी०ए०आर०

६- पर्यावरण, वन और वन्यजीवन का विभाग

७- केन्द्रीय जल स्वास्थ्य और पर्यावरणीय अभियांत्रिकी

८- शक्ति का विभाग

९- वनों का विभाग।

हमें जल जैसे अमूल्य संपदा को बचाने के लिये इसका प्रबन्धन करना अतिआवश्यक है। परन्तु बडे दुर्भाग्य की बात है कि इनमें किसी भी एजेन्सी को जल संरक्षण के लिये अधिक प्राथमिकता नही दी गई है। केवल केन्द्रीय जल आयोग के पास इस कार्य के लिये एक कार्यालय है। जल प्रदूषण नियंत्रण के भी कानून है और ये केन्द्रीय तथा राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड द्वारा लागू है। १९७४ के जल एक्ट को १९८८ में संशोधित किया गया।

६.२ बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनायें

इस परियोजनाओं में नदी घाटियों में बॉध बनाकर बडे-बडे जलाशयों एवं झीलों का निर्माण किया जाता है जो अत्याधिक मात्रा के वर्षा के जल को बन्द करने में सक्षम है। यह इस प्रकार बाढ नियन्त्रण और मृदा संरक्षण में सहायक होता है। इस जल का उपयोग गर्मियों के दिनों में सिचाई के लिए प्रयोग में लगाया जाता है। बॉध के जलग्रहण क्षेत्र वनरोपित है वहाँ पर अतिरिक्त वन्य भूमि है जो पारिस्थितिक तंत्र के बचाने में सहायक है। इन रोके हुये पानी का उपयोग जल विद्युत शक्ति, सिचाई करने, जल परिवहन हेतु, मछली पालन, भू-संरक्षण, पर्यटन विकास एवं वन रोपण आदि अनेकों कार्यो में किया जाता है।

बहुउद्देशीय परियोजनाओं में कुछ प्रमुख निम्नवत है:-

१- भाखड़ा नांगल बॉध परियोजना :- भाखडा नांगल बॉध परियोजना भारत की सबसे बडी परियोजना, हरियाणा, पंजाब और राजस्थान के संयुक्त प्रयासों से वर्ष १९५६ में प्रारम्भ होकर वर्ष १९६९ में पूरी हुयी। यह बॉध सतलज नदी पर पंजाब राज्य में रोपण से लगभग ८० किमी० ऊपर तथा भाखडा गॉव के पास दो पहाडियों के बीच बनाया गया है।

२- कोसी परियोजना:- यह परियोजना उत्तर बिहार में कोसी नदी पर है यह मुख्य नहर बिहार में ८७३००० हेक्टेयर भूमि को सिंचित करने के लिए है।

३- हीराकुण्ड बॉधः- यह बॉध उडीसा में स्थित है तथा यह विश्व का सबसे लम्बा बॉध है। ४.८ किमी० लम्बा बॉध है तथा ये ८१००० लाख घन मीटर जल को बॉधता है।

४- नागार्जुन सागरः- यह परियोजना आन्ध्र प्रदेश में कृष्णा नदी पर निर्मित किया गया है यह ८६७७०० हेक्टेयर भूमि सिंचित करता है।

५- चम्बल परियोजनाः- इसके द्वारा मध्य प्रदेश और राजस्थान के भागों को सिंचित किया जाता है।

६- रिहन्द बॉध परियोजनाः- यह बॉध मिर्जापुर जिले के पिपरी गॉव के समीप रिहन्द नदी पर ६१.५ मीटर ऊँचा और ६३४ मीटर लम्बा बनाया गया है। इस परियोजना से मिर्जापुर तथा वाराणसी जिलों की सिचाई, विद्युत तथा उद्योग धन्धों की पनपने की समस्याओं का निराकरण हुआ है। देश की इस प्रकार की कई अन्य परियोजनायें भिन्न नदियों पर है।

अध्याय–१०
सह अस्तित्व के लिए प्रार्थना

आधुनिक विश्व की सर्वाधिक महत्वपूर्ण समस्या पारिस्थितिक असन्तुलन है, जिसका मूल कारण औद्योगिक विस्तार के लिए मनुष्य द्वारा प्राकृतिक संसाधनों का अनियंत्रित दोहन है। आज हम एक ऐसे विश्व में जी रहे हैं जिसका सम्पूर्ण ढांचा विशाल औद्योगिक इकाइयों से मिलकर बना है और औद्योगिक हमारे परिवेश और चिन्तन का अभिन्न अंग बन चुकी है। ऐसी स्थिति में पारिस्थितिक असन्तुलन की गम्भीरता को कम करने की दिशा में सोचते समय स्वभावतः हमारा ध्यान यंत्रों और यांत्रिक प्रविधियों के माध्यम से ही उद्देश्य-प्राप्ति की ओर अधिक आकृष्ट होता है। यह कुछ-कुछ वैसा ही है जैसे विष को विष से समाप्त करने की बात। कई स्थितियों में और कुछ निश्चित सीमाओं तक यह ठीक भी है। लेकिन इसे सार्वदेशिक, सार्वकालिक और समग्र समाधान के रूप में नहीं स्वीकार किया जा सकता। केवल यन्त्रों और यान्त्रिक प्रविधियों की सहायता से पारिस्थितिक असन्तुलन की समस्या का समाधान लगभग असम्भव है। इसके लिए इतर प्राविधिक चिन्तन और संकेतिक दृष्टिकोण अपरिहार्य है।

आज पर्यावरण सुधारने के लिए एक समग्र दर्शन की आवश्यकता है। औद्योगिक विकास रोकने की नहीं, बल्कि उसके पीछे काम करने वाली दूषित विचारधारा ही बदलने की आवश्यकता है। मानव प्रयासों को उपयुक्त दिशा देनी चाहिए। संस्कृति को विकृत होने से बचाना चाहिए। इसके लिए एक मात्र इलाज है भारतीय शिक्षा जिसमें मानवता के तत्व कूट-कूट कर भरे हैं तेजी से बढ़ने वाली समस्त संस्कृतियों का पतन अवश्यम्भावी है। किन्तु प्राचीन भारतीय वांगमय समग्र पारिस्थितक चिन्तन का भण्डार है, जो अक्षुण्य, अनन्त, अविरल व अथाह है।

यही भारतीय संस्कृति, आश्रम संस्कृति- जिसे गुरूदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने 'अरण्य संस्कृति' कहा है सभी की संस्कृति आर्थत मानव संस्कृति है और केवल मात्र इसी से सहअस्तित्व का पाठ याद कर पर्यावरण को बचाया जा सकता है। क्योंकि **"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कच्चिद् दुःखभाग् भवेत"।।** केवल भारतीय दर्शन का ही प्रादर्श है और इसी से समग्र प्रकृति का संरक्षण व संवर्धन किया जा सकता है।

अध्याय–११
स्वदेशी अवधारणा

भारतीय मनीषियों ने समूची प्रकृति ही क्या, सभी प्राकृतिक शक्तियों को देवतास्वरूप माना। ऊर्जा के अपरिमित स्रोत को देवता माना– **'सूर्यदेवो भव।'** वस्तुतः सूर्य हमारा यानी इस ग्रह का जीवनदाता है। बिना उसके वनस्पतियों का और परोक्ष रूप से अन्य जीवों का अस्तित्व असम्भव है। तभी तो वैदिक ऋषि कामना करता है कि सूर्य से कभी हमारा वियोग न हो –

'नः सूर्यस्य संदृशे मा युयोथाः।' –ऋक०२।३३।१

सूर्य को स्थावन–जंगम की आत्मा कहा गया है यथा–

'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च' ऋक०१।११५।१

उपनिषदों में सूर्य को प्राण की संज्ञा दी गई है–

'आदित्यो ह वै प्राणः' प्रश्न उप०१।५

वस्तुतः सूर्य हममें, सभी प्राणियों में, वनस्पतियों में जीवन का संचार करता है। सागरों की गोद में आज से अरबों वर्ष पूर्व जीवन का जो आदि रूप पनपा, उसमें सूर्य रश्मियों से ही जीवन संचारित हुआ तब से निरन्तर यह प्रक्रिया जारी है। वनस्पतियाँ सूर्य रश्मियों से ऊर्जा लेकर अपना आहार तैयार करती हैं और उन्हीं से अन्य पराश्रयी जीवन–जन्तु अपना भरण–पोषण करते हैं।

ऐसे जीवनदाता के रूप में किसी दैवी शक्ति के प्रतीक रूप की कल्पना भारतीय मनीषियों ने की तो वह सर्वथा समीचीन थी। हमारे शाश्वत मूल्यों के संवाहक आज भी प्रयास यही करते हैं कि घर का द्वार पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख हो ताकि सूर्य का प्रकाश सम्मूर्ण रूप से वहां पहुंच सके–

प्रैंमुखमुर्दैंमुखं वा५र्हिमुखतीर्थ कूटागारं कारयेत्'

–चरकःसु०अ० १४।४६

और –

'प्राग्द्वारमुदग्द्वारं वा सूतिकागारं कारयेत्' –चरकःशा०अ० ८।३३

उपनिषदों में वायु में दैवीय शक्ति की अवधारणा निहित है। वायु ही प्राण बनकर शरीर में वास करता है। यथा –

'वायुहं वै प्राणो भूरवा शरीरमाविशत्'

वेदों में वायु को भेषज गुणों से युक्त माना गया है–

'आ वात वाहि भेषजं विवात वाहि यद्रपः।।

त्वं हि विश्वभेषजो देवानां दूत ईयसे।।' –ऋक०१३७।३

अर्थात– 'हे वायु! अपनी औषधि ले आओं और यहाँ से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सब औषधियों से युक्त हो।'

भारतीय संस्कृति में जल को भी देवता माना गया है। सरिताओं को जीवन–दायिनी कहा गया है, कदाचित् इसी नाते आदि संस्कृति या सरिताओं के किनारे उपजी और बसी और वहीं से विस्तार

पाती गयी। वर्जनाहीन समाज और निरन्तर पतनोन्मुखी जीवन-शैली में भले ही मूल्य बदल गए हों पर हमारी पुरातन संस्कृति में सरिताओ, तालाबों, पोखरों में मल-मूत्र-विसर्जन की तो कल्पना भी नही की जा सकती थी-

नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्टावनं समुत्सृजेत्।

अमेध्यलिप्तमन्यद्वा लोहितं वा विषाणि वा ।।

-मनुस्मृति ४-५६

अर्थात -पानी में मल-मूत्र, थूक अथवा अन्य दूषित पदार्थ, रक्त या विष का विसर्जन ना करें।

इतना ही नहीं, वैदिक ऋषि पवित्र जल की उपलब्धता की कामना करता है। यथा-

'शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु.....। -अथर्व०, भूमि-सूक्त, १२।१।३०

अर्थात- हमारे शरीर के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होते रहें।

सरोवरों में नहाने से पूर्व परम्परा यह थी कि एक कंकड़ी मारकर सो रही होती गंगा को जगाया जाता था, फिर उनका चरण-स्पर्श कर जलस्रोत मे शारीरिक आचमन किया जाता था। हमारी पुरातन संस्कृति और भारतीय वैंमय का यह एक ऐसा कोमल तन्तु है, जिसे सोचने-समझने और उस पर विचार-मनन करने की हमारी सोच मर गयी है, हमारी संवेदनशीलता को इस यान्त्रिकता ने लील लिया है और आज हम अपनी थाती में निहित शुभ संकल्पों के कोमल तन्तु को समझ पाने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इस तकनीकी संस्कृति (Technoculture) की कैसी त्रासदी है यह!

और इस तकनीकी युग का तोहफा यह है कि आज गंगा समेत सारी नदियां दूषित हो चुकी हैं। गंगा के बारे में हमारी अवधारणा रही है कि उसके दर्शन मात्र से ही मुक्ति मिल जाती है-

'गंगे! तव दर्शनात् मुक्तिः'

पर आज मूल्य और जीवन शैली में इतना अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया है कि राजा भगीरथ के पुरखों का कलुष धोने वाली गंगा शहरो का मल और फैक्टरियों की गन्द ढोते-ढोते स्वयं इस कदर दूषित हो गयी है कि आज वह पीने योग्य नहीं रही, नाना बीमारियों का घर बन चुकी है। विकास की यह कैसी धारा है, जिसने हमारी जीवनदायिनी सरिताओं की पवित्रता की अक्षुग्णता भंग कर दी है!

हमारी भारतीय संस्कृति में वृक्षों को भी देवता माना गया है। हमारे महान् आयुर्विज्ञानियों की धारणा है कि संसार में ऐसी कोई वनस्पति नहीं जो अभैषज्य हो। सम्भवतः इसी नाते वृक्षों को वन्दनीय कहा गया है। यथा-

धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनां धर्मव्यथां वहति शीत भवा रुजश्च।

यो देहमर्पयति चान्यसुरवस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरवे तरवे नमोऽस्तु।।

-भामिनी विलासः

अर्थात- 'जो वृक्ष फूल- पत्ते और फलों के बोझ को उठाए हुए धूप की तपन और शीत की पीड़ा सहन करता है तथा पर-सुख के लिए अपना शरीर अर्पित कर देता है, उस वन्दनीय श्रेष्ठ तरु को नमस्कार है।' कैसी उदात्त भावना है वृक्षों के प्रति अनुराग की इतना ही नहीं, मत्स्यपुराण में तो यहां तक कहा गया है -

दश कूप-समावापी, दशवापी-समोहृदः।
दश-हृद-समः पुत्रों, दश-पुत्रसमो द्रुमः।।

अर्थात- दस कुओं के बराबर एक बावड़ी है, दस बावडियों के बराबर एक तालाब है, दस तालाओं के बराबर एक पुत्र है और दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष है।'

वृक्षों के प्रति ऐसे अप्रतिम अनुराग की छाया भी किसी अन्य देश की संस्कृति में सर्वथा दुर्लभ है।

गायत्री मंत्र में **ऊँ भूर्भूवः स्वः'** में इच्छा प्रकट की गई है, एक आत्म-निवेदन है, एक सच्ची लालसा है- 'जो सूर्य पृथ्वी, भुव और स्वर्ग, तीनों लोकों को प्रकाश मान करता है, वह मेरी बुद्धि को भी दिव्य और प्रखर करे' सूर्य के तेज को बुद्धि के तेज से जोड़ने की कामना, प्रकृति के तत्व को संस्कृति से जोड़ने की कामना ही तो है!

वामन पुराण में तो प्रातःकाल उठते ही पांचों तत्वों का स्मरण करने की परंपरा पर जोर दिया गया है- 'पृथ्वी अपनी सुगंध, जल अपने बहाव, अग्नि अपने तेज, अंतरिक्ष (आकाश) अपनी शब्द-ध्वनि और वायु अपने स्पर्श गुण के साथ हमारे प्रातःकाल को अपना आशीर्वाद दे- यही हमारी कामना है!''(वामन पुराण १४.२६)

सूर्य और पंच तत्वों की इस आराधना की तरह ही पृथ्वी से आत्मीय लगाव की बात आयुर्वेद में भी कही गई- ''जिस धरती पर वृक्ष, वनस्पति एवं औषधियाँ हैं जहां स्थिर और चंचल (स्थावर और जंगम) सबका निवास है, उस विश्वंभरा धरती (मातृभूमि) के प्रति हम कृतज्ञ है- हम उसकी स्वतंत्रता की प्राणपण से रक्षा करेंगे।'' (अथर्ववेद १२.१.३१) यह है है कि कृतज्ञता का भाव जो हमारी सांस्कृतिक चेतना ने हमारे रोम-रोम में भर रखा है।

गीता में भगवान् कृष्ण ने अपनी प्रकृति को अष्टकोणी बताया है और इनमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश के साथ-साथ मन, बुद्धि, एवं अहंकार की भी गणना की गई है। (गीता ७.४) लक्ष्य यह है कि पांचों तत्व मिलकर मन और बुद्धि को निर्मल रखें और अहंकार को संयमित करें।

जल में कुछ विशेष गुण हैं- लचीलापन, दृढ़ता, क्रांति, गंभीरता, शीतलता, शुद्धता, प्रजननशीलता, सातत्य और एकता। 'युक्ति दीपिका' के पृष्ण १४१ पर जल के गुणों का स्मरण करके मनुष्य के चरित्र में इन गुणों के विकास की कामना की गई है। उस वायु की भी आराधना की गई है, जिसको लेकर लोग संसार में प्रवेश करते हैं और जिसे छोड़ते ही संसार से विदा हो जाते हैं। (छांदोग्य उपनिषद १.११.५) वह अग्नि भी कितनी हितकारी है, जिसके प्रताप से जल वाष्प बनकर उड़ता है, फिर बादल बनते हैं और तब वर्षा होती है (शतपथ ब्राह्मण ५.२३.५.१७)।

जैन धर्म के उत्त० सू० २१/१६ में प्रकृति की रमणीयता का वर्णन है- ''शरद् ऋतु का कमल जिस प्रकार जल में निर्लिप्त रहता है, उसी प्रकार तु भी स्नेह (ममता) से मुक्त रहा, प्रमाद मत करो'' जल में कमल की तरह निर्लिप्त रहने के प्रतीक के माध्यम से, संसार में रहते हुए भी मायाजाल में न फंसने के प्रति व्यक्ति को सावधान किया गया है।

सिख पंथ का आविर्भाव ही प्रकृति की गोद में हुआ था। गुरु नानक अपने युग के सबसे बड़े परिब्राजक थे। अपनी सुप्रसिद्ध उदासीन यात्राओं में वे गिरि-श्रंगों, घाटियों, उपत्यकाओं, पर्वतमालाओं

और सघन जंगलों तक में गए, तीर्थस्थलों का भ्रमण किया तथा जनपदों में जाकर गांवों के भोले-भाले किसानों के आतिथ्य से लेकर मठों और मंदिरों में विद्वानों से शास्त्रार्थ तक किया। गुरु नानक ईश्वर की आरती दिखाव के उपकरणों के स्थान पर प्रकृति के माध्यम से करना चाहते थे। घंटा, घड़ियाल, दीपक, शंख, चंदन, चँवर आदि तो सब बाहरी उपकरण हैं, प्रकृति अपने प्रभु की पूजा अपने ही प्रकार से करती है। जब आकाश रूपी थाल, सूर्य-चिंद्र रूपी दीपक, तारागण रूपी मोती, मलयागिरि चंदन रूपी चँवर और वनखण्ड के पुष्पों की अर्चना-सामग्री विद्यमान है, तो फिर नकली और दिखावे के साधनों की क्या जरूरत है? गुरु नानक का यह प्रकृति-प्रेम शब्दों का आकार लेकर सांस्कृतिक चेतना के रूप में उनके काव्य में जगह-जगह बिखरा हुआ है।

हिंदू शास्त्रों में तो प्रकृति और संस्कृति को अलग करके देखना असंभव सी बात है। जहाँ तुलसी का ब्रत, पीपल की पूजा, गाय आदि पशुओं का सम्मान, गंगा जैसी नदियों की स्तुति, सूर्य-चंद्र, मरुत जल और पृथ्वी के देवत्व की कल्पना आदि का वर्णन हो, वहां प्रकृति से बिलग रहने की बात भला कौन सोच सकता है। स्कंद पुराग २१.६६ के अनुसार ''जिस घर में प्रतिदिन तुलसी की पूजा होती है, उसमें यमदूत प्रवेश नहीं कर सकते।'' तुलसी की इस आरोग्यवर्द्धक शक्ति को हमने संजोया है और शताब्दियों तक जीवित रखा है। मीरा के अनुसार, वृदांवन उन्हें इसलिए प्रिय है, क्योंकि वहां 'घर-घर तुलसी, ठाकुर पूजा, भोजन दूध-दहीं' का आनंद मिलता है। बाराह पुराण (१७२.३९) में तो पेड़-पौधों और वनस्पतियो के रोपण, पोषण और संवर्द्धन को पुण्यकार्य माना गया है। ऐसा कार्य करने वाला व्यक्ति प्रकृति का वरदान पाने का हकदार है। मंत्र में व्यववस्था है कि- ''जो व्यक्ति अपने जीवन में एक पीपल, एक नीम और एक बड़ का पेड़ लगाए, दस फलोंवाले वृक्षों और लताओं का रोपण करे, अनार, नारंगी और आम के दो-दो वृक्ष लगाए, वह कभी नरक में नहीं जाता।

साहित्य मनुष्य की चेतना का जीवंत दस्तावेज है। यह हमें काल को देखने परखने की दृष्टि देता है और हमारी संवेदनाओं का विस्तार करता है। कालिदास का मूघदूत प्रकृति - प्रेम की एक अमर कृति है। समंदाक्रांता छंद में लिखे गए इस काव्य में नदियों, पहाड़ों, ललित लताओं, पर्वत -शिखरों, सुरम्य वादियों, मंदिर - कलशों, छलांग भरते हरिणों, उथली-गहरी तलैयों, अंगूर की बेलों आदि के सजीव चित्र आंखों के सामने से निकलते रहते हैं। नागार्जुन के अनुसार इन कल्पनाओं में इलायची की लताओं से आलिंगित चंदन लरुओं, मयाचल की तलहटी में काली मिर्च की झाड़ियों में उड़ते हुए हरे-नीले तोतों, सिंधु नदी की धारा में लोट-पोटकर थकावट मिटाते घोड़ों, अंगूर, की बेलों, लहराते मदार के पेड़ों, मृणालवाले स्वर्ण कमलों, कदंब के अद्ध-स्फटित केसरोंवाले हरे-पीले फूलों पर मंडराते भंवरों, लवंगलताओं तथा झरोखे-जालियों से छनकर आती चांद की अमृत शीतल किरणों आदि के चित्रण मिलते हैं।

जय देव के 'गीत गोविन्द' में बसंत का वर्णन उस समय तक साकार नहीं होता, जब तक उसमें कोमल मलय समीर और लवंग-लताओं का वर्णन न हो। कोयलों की कूक और भौंरों का गुंजन, युवतियों का नृत्य और हास-विलास ही मिलकर बसंत में अपना रंग भरते है। बसंत का आनंद हर कोई लेता है। हाँ, विरही जन इसके अपवाद हैं। कालिदास ने अपने बसंत-वर्णन में पुष्पों से लदे हुए वृक्ष, कमलदल वाले सरोवर, सुंगंध फैलाने वाली पवन, दोषरहित सुख, रमणीय दिन और कामासक्त नारियों की कल्पना की है। सरस्वती की अभ्यर्थना में यदि हम प्रकृति को भूल जाएँ,

तो फिर बाकी बचेगा ही क्या? यदि वंदना के सुप्रसिद्ध मंत्र- या कुंदेंदु-तुषारहार-धवला' में कमल, चंद्रमा, बर्फ, हंस और दंड आदि को हटाकर देखा जाए तो मंत्र की शक्ति ही लुप्त हो जाती है। प्रकृति प्रेम का छलकता प्याला ही हमारी संस्कृति का महान अमृत पात्र है।

जगदीश चंद्र वसु ने कहा था कि हमें पर्यावरण को लेकर एक समग्र दृष्टि बनानी चाहिए। सर्वोदयी लेखिका स्व० सरला देवी ने अपनी पुस्तक 'संरक्षण या विनाश' में लिखा है- 'प्रकृति शांति है, धैर्य है, समग्रता है और समन्वय है।' मुनि कवि वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु और साहित्यकार सरला देवी के विचारों को यदि एक सूत्र में पिरोया जाए तो यही ध्वनित होता है कि प्रकृति के बिना हम अधूरे है, प्रकृति हमारी और हम प्रकृति के पूरक हैं तथा प्रकृति से रहित जीवन नीरस, निष्पंद और निष्प्राण है।

पद्मपुराण में उन व्यक्तियों को निश्चित रूप से नरक का अधिकारी माना गया है जो जीव हिंसा करते हों या कुओं, तालाबों और उद्यानों को प्रदूषित करते हों। ऐसे व्यक्ति स्वर्गारोहण नहीं कर सकते। (पद्मपुराणः भूमिखण्ड ९६-७-८) जल वैसे निर्मल होता है, लेकिन प्रदूषण के पश्चात उसके रूप, गुण और गंध सब में विकार आ सकते हैं। प्रदूषित जल की व्याख्या करते हुए चरक संहिता में कहा है- ''उस जल को अत्याधिक प्रदूषित माना जाना चाहिए, जब वह गंध, रंग, स्वाद एवं स्पर्श आदि में विकृत हो, बहुत चिपचिपा हो अथवा पशु-पक्षियों तक से परित्यक्त एवं आनंद रहित हो।''

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने जैन मत की विशेषताओं का वर्णन करते हुए अपने ग्रंथ 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है - 'जैनियों की अहिंसा निस्सीम है। स्वयं हिंसा करना, दूसरों से करवाना, या किसी तरह हिंसा में योगदान देना जैन मत में मना है। विशेषता यह है कि जैन दर्शन में केवल शारीरिक हिंसा ही वर्जित नहीं है, प्रत्युत वह बौद्धिक अहिंसा को भी अनिवार्य बताता है। यह बौद्धिक अहिंसा ही जैन दर्शन का अनेकांतवाद है।

गुरु नानक आचरण की पवित्रता के प्रवक्ता थे। उन्होंने जनेऊ का प्रतिकार करते हुए कहा था- ''इन पवित्र धागों में जब तक दया की कपास, संतोष का सूत और सत्य की घुंडी न हो, तो भार रूप में जनेऊ धारण करके द्विजत्व की तख्ती भले ही लटका लें, जीवन को शुद्ध करने का तरीका तो यह नहीं है।'' जिस व्यक्ति में दया और संतोष के भाव हों, उससे यह आशा ही नहीं की जा सकती है कि वह हिंसा करेगा। दया हिंसा का एक प्रकार से विलोम है, और संतोषी प्राणी के लिए तो वहीं पर्याप्त है जो प्रकृति वनस्पति अथवा अनाज के रूप में उसे देती है- फिर वह भला जीव-हिंसा क्यों करेगा?

बौद्ध जातक के पेड़ों के विषय में एक कथा है- ''एक अरण्य में बोधिसत्व वृक्ष देवता होकर पैदा हुआ है। उससे थोड़ी दूर पर दूसरे वृक्ष देवता थे। उस वनखण्ड में सिंह और व्याघ्र रहते थे। उनके भय से सभी वृक्ष सुरक्षित थे- न कोई जंगल में आता और न ही पेड़ काटता। एक दिन एक मूर्ख पेड़ ने समझदार पेड़ से कहा- इन सिहों के कारण हमारा वन मांस की दुर्गंध से भर गया है। मैं इनको डराकर भगा दूँ? बोधिसत्व ने कहा- मित्र, इनके कारण हम सब सुरक्षित हैं इनको भगा दोगे तो हमारा नाम-निशान भी मिट जाएगा। मगर उस मूर्ख पेड़ ने कुछ न सुना और सिंहो को डराकर भगा दिया। अब क्या था! लोग कुल्हाड़े लेकर आ गए और लगे पेड़ों को काटने। तब मूर्ख वृक्ष ने कहा- आपका कहना न मानने का ही यह फल है। ज्ञानी वृक्ष बोले- आओ व्याघ्रो, लौट

आओ- फिर महावन को चलो, जिससे व्याघ्र-रहित वन को लोग न काटें और व्याघ्र भी सुरक्षित रहें।'' अन्योन्याश्रयता का इससे उत्तर उदाहरण और क्या हो सकता है।

हिंदू धर्म ग्रन्थों में तो अहिंसा का पर्याप्त प्रतिपादन मिलता है। मनुस्मृति व्यक्तियों के आचार और व्यवहार की एक स्वीकृत संहिता है। उसमें ऐसे अनेक श्लोक हैं, जिनमें हिंसा का विरोध किया गया है। पशुओं की हत्या करने वाला ही केवल हिंसक नहीं कहलाता- जो व्यक्ति पशु हत्या की आज्ञा देता है, जो पशु को काटता है, जो उसे मारता है, जो मांस बेचता या खरीदता है, जो उसे परोसता है और जो उसे खाता है- वे सब हत्या के दोषी हैं (मनुस्मृति ५.५) इसी प्रकार अपने आनन्द के लिए जो निर्दोष पशुओं का बध करता है, उसे न तो जीवित रहते और न मरने के बाद कभी खुशी हासिल हो सकती है। (मनुस्मृति ५.४५)

विष्णु पुराण में मनुष्य की दुष्ट प्रकृति के विरुद्ध चेतावनी का एक श्लोक है- ''हे दुष्टात्मा! यदि तुमने किसी पक्षी को भूनकर खाया तो समझ लो, तुम्हारे सारे यज्ञ, पूजा-पाठ, तीर्थ यात्राएं और पवित्र नदियों में स्नान आदि व्यर्थ हैं।'' (विष्णु पुराण ४.८१५)

ब्रह्मवैवर्त पुराण में पृथ्वी की पीड़ा इस प्रकार रूपायित होती - ''मैं उन दुष्टों के भार से दबी हुई हूँ जो पशुओं की हत्या करते हैं, गुरुओं से शत्रुता रखते है, देशद्रोही हैं, लालची और शवदाही हैं- ऐसे व्यक्ति मुझ पर भार हैं।'' (ब्रह्मवैवर्तपुराण, कृष्ण-जन्म खंड ४.२६) यह श्लोक अपने आपमें स्पष्ट है। इसमें पशुओं की हत्या करना और शवदाह के लिए वनखंडों के वृक्षों को काटना, दोनों वर्जित किए गए हैं। इनसे उत्पन्न होता है एक सदाचरण, जो हमारी संस्कृति की थाती है। देश भक्ति और गुरुओं के प्रति सम्मान उसी पवित्र भावना की उपज हो सकती है जो प्रकृति और पशु तक से प्रेम करे, न वृक्ष काटे और न पशु-वध करे।

चाणक्य ने अपने अर्थशास्त्र में कुछ दंड-विधान रखे हैं, ताकि कानून तोड़ने वालों को अनुशासति किया जा सके। चाणक्य के युग में मुद्रा के रूप में 'पण' प्रचलित थे। चाणक्य (कौटिल्य) के अर्थशास्त्र की नागरिक प्रविधि ५६.३६.५६ के अनुसार-''अधिकारी को चाहिए कि वह उन सभी अपराधियों पर एक हजार पण का दंड प्रतिरोधित करे जो राज्य द्वारा हत्या के लिए वर्जित हरिणों अथवा अन्य पशु-पक्षियों और मछलियों के शिकार के दोषी हों। जो व्यक्ति ऐसे पक्षियों या मछलियों की हत्या के दोषी पाए जाएँ जो अपनी ओर से आक्रमण नहीं करती, उस पर पौने सत्ताइस पण का जुर्माना होगा।''

स्वामी दयानंद के अनुसार- ''नाना प्रकार के रत्न-धातुओं से जड़ी धरती, विधि प्रकार के वट वृक्ष आदि के बीजों में अति सूक्ष्म रचना, असंख्य हरित-श्वेत-पीत-कृष्ण चित्रमय रूपों से युक्त पत्र, पुष्प, फल, मूल-निर्माण, मिष्ट, क्षार, कटु, कषाय, तिक्त, अम्लादि विधि रस, सुगंधि युक्त पत्र, पुष्प, फल, अन्न, कंद, मूलादि की रचना अनेकानेक करोड़ों भूगोल, सूर्य-चंद्रादि लोक-निर्माण, धारण, भ्रमण के नियमों की रचना आदि परमेश्वर के बिना कोई नहीं कर सकता है।'' परमेश्वर की इस सृष्टि का आनंद तभी है, जब हम अपने आपको इसके योग्य सिद्ध करें।

वृक्षों से भारतीय नारी का भावात्मक संबंध है। समर्पित भाव से वृक्षों की सेवा, उनकी पूजा और संरक्षण प्रकृति को प्राणयुक्त मानने की विचारधारा को पल्लिवित करता है। महिलाओं द्वारा वृक्षारोपण करना, वृक्षों की देखीभाल और संरक्षण करना ये सभी प्रेरणाएं मानों उन्हें प्राचीन काल से

ही प्राप्त हुई हैं। आज भारतीय महिलाये चाहे निरक्षर हों या साक्षर वृक्षों को अपना संगी साथी मानकर भावात्मक रूप से अंगीकार करती दिखाई देती है। महिलाएं संस्कारों से भी प्रकृति प्रेम से जुड़ी है। तीज–त्योहारों तथा धार्मिक अनुष्ठानों में पीपल, बड़, आम के पल्लव, कमल, कुंद, अशोक, तुलसी आदि की पूजा–अर्चना करना उनके जीवन से जुड़ा हुआ है। वे उनकी रक्षा हेतु तत्पर भी रहती हैं, क्योंकि वृक्षों की पूजा भारतीय महिलाओं को सांस्कृतिक विरासत में, एक उज्ज्वल आदर्श के रूप में प्राप्त हुई है।

यद्यपि पौराणिक काल की शंकुन्तला के समय में पारिस्थितिकी–असंतुलन एवं अशुद्ध पर्यावरण जैसी कोई समस्या नहीं थी, फिर भी यह सोचा गया होगा कि मानव के अस्तित्व के लिए पर्यावरण का शुद्ध होना अत्यंत आवश्यक है। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व शंकुन्तला का वृक्ष–पालन भारतीय संस्कृति की उज्ज्वल छबि के रूप में विश्व–प्रसिद्ध है। प्रियंवदा तथा अनसूइया के साथ छोटी–छोटी गगरियां लेकर सदैव पेड़ों के थालों को सींचती थी। उसके द्वारा संपन्न वृक्ष संरक्षण कार्य भारतीय लोक–भावना का प्रतिनिधित्व करता है। वह केवल किसी आदेश या निर्देश के पालन में यह कार्य नहीं करती थी, बल्कि स्वयं वृक्षों को अपने संगे–सहोदर जैसा प्यार करने की ललक उसके हृदय में प्रकृति प्रदत्त ही थी।

पौराणिक काल की सकुंलता जैसी महिला भी यह समझती थी कि वर्षा, भूमि की उर्बरता, क्षरण की रुकावट, हमारा भोजन, हमारा आच्छादन, हमारा सौंदर्य, हमारा माधुर्य– सब कुछ इन वृक्षों में ही निहित है। वृक्ष जब पृथ्वी पर छत्र की तरह तनकर छा जाते हैं तो वे प्रदूषण को दूर भगाने वाले सजग प्रहरी की तरह दिखाई पड़ते हैं।

भगवती पार्वती को अपने हाथ से लगाए देवदारु से कितना प्रेम है– इसे महाकवि कालिदास के शब्दों में जाना जा सकता है– ''सुनिए!'' सिंह ने कहा– ''हे राजन, वह जो तुम्हारे सामने बड़ा–सा देवदारु का वृक्ष खड़ा दिखाई दे रहा है, इसे शंकर अपने पुत्र के समान मानते हैं, क्योंकि स्वयं पार्वती ने अपने सीने के घटरूपी स्तनों के रस से सींच–सींचकर इसे इतना बड़ा किया है। तुम जानते नहीं, पार्वती इसे कितना प्यार करती है! एक बार एक जंगली हाथी आकर इससे रगड़कर अपनी कनपटी खुजलाने लगा, तो इसकी चौड़ी–सी छाल छिल गई। बस इतने में ही पार्वती को वैसा ही शोक हुआ, जैसे दैत्य के बाणों से घायल स्वामी कात्रिकेय को देखकर हुआ था।'' भगवती पार्वती ने संभवतः यह सोचकर ही ऐसा किया होगा कि ये वृक्ष हमें रात–दिन उपदेश देते हैं कि 'देना ही जीवन है'। साथ ही फलों के भार से झुके पेड़ सदा विनम्र होने का भी उपदेश देते है।

पाँच सौ वर्ष पूर्व जांभो जी महाराज ने जो उपदेश दिया था, उसी से प्रेरित होकर श्रीमती करमा एवं श्रीमती गौरा ने खेजड़ी वृक्षों की रक्षा करते हुए अपने प्राण न्यौछावर कर दिए थे। इसी प्रकार की एक अन्य घटना में,जोधपुर राज्य के तिसणी गांव में खेजड़ी वृक्ष की रक्षार्थ श्रीमती खींवणी खोंखर एवं श्रीमती नेतू नेतणा ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिए। महिलाओं द्वारा वृक्षों की रक्षा की सबसे महत्वपूर्ण घटना 'खेजड़ली' गांव में महिलाओं द्वारा सामूहिक बलिदान की है। उक्त गाँव में महिलाएं खेजड़ी की रक्षा हेतु वृक्षों से चिपक गई थी। अमृता देवी, दामी, चीमा आदि अनेक महिलाओं ने वृक्षों के लिए अपने जीवन का बलिदान दे दिया। इससे स्पष्ट है कि महिलाएं वृक्षारोपण ही नहीं करती, बल्कि उनकी रक्षा हेतु अपने प्राण भी न्यौछावर कर देती है। यहाँ उनकी ममता का अनूठा विश्व–इतिहास सामने आता है।

जहाँ वृक्षों को पुत्र से उच्च्य स्थान प्राप्त है, जहां वृक्षों की पूजा की जाती हो, वहां उनके काटे जाने की बात भी अकल्पनीय है। परन्तु आज मूल्य बदल गए हैं। हम अपने सांस्कृतिक वाणी सुन पाने में असमर्थ हैं। और आज इसी का कुल है कि प्रकृति को लूटने-खसोटने की होड़ मची है।

हमारी प्राचीन संस्कृति प्रकृति में देवी स्वरूप का दर्शन पाती थी, उसकी अर्चना करती थी, प्रकृति को माता की संज्ञा दी गयी है, पर आज की मूल्य विहीन जीवन-शैली में हम अपनी पहचान भूल गए हैं, मूल्यों की रक्षा का तो प्रश्न ही नहीं और इसी का दुष्परिणाम यह है कि आज मानव और प्रकृति के रिश्ते नापाक हो गए हैं और अपने ही कृत्यों से हमने अपने पर्यावरण को बिगाड़ लिया है जो आज जीने लायक नहीं रह गया है।

प्राकृतिक शक्तियों में दैवी स्वरूप की अवधारणा मात्र यह इंगित करती है कि हम इनकी रक्षा करें, इनसे अनुराग रखें और स्वस्थ्य, संतुलित जीवनयापन करें। लेकिन आज के इस वर्जनाहीन समाज में न तो जल शुद्ध रह गया है, न हवा। हवा में जहर, पानी में जहर, यहाँ तक कि वादियों, घाटियों में भी घुल गया है जहर!

भारतीय संस्कृति में निहित इन बिन्दुओं को यदि नैतिकता-अनैतिकता की सीमा रेखा में न भी बांधें तो भी ये प्रकृति और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की संवाहक प्रतीत होती हैं और भारतीय चिन्तन धारा की यही प्रमुख विशेषता रही हे जो इस प्रदूषण-अभिशप्त सदी में हमें अपने अतीत की याद बार-बार दिलाती है।

जिस संस्कृति में धरती और सभी संसाधन यथा जल, वनस्पतियां नैवेद्य की वस्तुएं समझी जाती रही हों, उसे नियामक निःसंदेह अत्यन्त दूरदर्शी थे। उन्हें इस बात का भान था कि ये संसाधन हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए हैं, अपव्यय करने पर शीघ्र ही चुक जायेंगे पर हमने इन्हें लूटा-खसोटा और आज प्राकृतिक संसाधनों के चुक जाने का आसन्न संकट हमारे सामने है।

यदि मशीनी क्रान्ति का नशा इसी कदर हम पर हावी रहा तो वह दिन दूर नहीं जब हम मानवीय सम्बन्धों और दिलों का रिश्ता भी भूल जायेंगे और पशुवत् जीवन यापन करेंगे। प्रकृति से दूर, सुदूर और अपने ही ईजादों से अपने चारों ओर विनाश की कारा से हम आवृत्त होंगे।

प्रकृति को वश करने की प्रवृत्ति और उसे लूटने-खसोटने का दुष्प्रभाव यह पड़ा है कि आज ऊर्जा के प्राकृतिक भण्डार जबाव दे रहे है।। वे हमारी औद्योगिक युग की बढ़ती मांगों को पूरा कर पाने में असमर्थ हो चुके हैं। धरती बाझ होती जा रही है। उसे कृत्रिम खादों का इन्जेक्शन दे-देकर उपज ले पा रहे हैं। जीवों का विनाश हो रहा है। धरती के मानचित्र से कितनी जातियां-प्रजातियां लुप्त हो चुकी हैं। फलस्वरूप बीमार, कमजोर सन्तानें उपज रही हैं।

आज हम २१वीं सदी में जाने की धूमधाम से तैयारी कर रहे हैं, उसकी देहरी पर आ ही पहुंचे हैं पर आइए, यह ऑकलन कर लें कि किन विरासतों के साथ हम अगली सदी में प्रवेश करेंगे।

यह कैसा दुःखद तथ्य है कि हमारी अधिकांश नदियां अपनी सफाई की क्षमता खो चुकी है। ये भयानक रूप से प्रदूषित हो चुकी हैं और प्रदूषण जन्य रोगों तथा मिलावटों के जहर के साये में जी

रही अगली सदी के लोगों की जिन्दगी खुद-ब-खुद घट जायेगी, प्रतिजैविकी में हुई तमाम ईजादें भी बढ़ती मौतों और घटती उम्र पर काबू न पा सकेंगी।

मशीनीकरण और प्रौद्योगिकी की यह नियति रही है कि वह आदमी की संवेदना को मार देती है। अगली सदी का आदमी अपनी मानवीय संवेदनाओं से लुप्त होगा। आज ही हालत यह है कि देश के कई महानगरों में, जहां समय से भी तेज भागती जिन्दगी है, हर आदमी भौतिकता की दौड़ में जल्दी से जल्दी आगे निकलना चाह रहा है। वह एक मुहल्ले तो क्या, एक ही फ्लैट मे रहने वाले दूसरे आदमी को जानने की जहमत नहीं पालता। नहीं मालूम, प्रगति की यह अन्धी दौड़ हमें कहा ले जायेगी।

प्रकृति से निरन्तर कटते चले जाने और जन्म ले रही नितान्त **'तकनीकी संस्कृति'** वाली अगली सदी में आदमी-आदमी के बीच एक लम्बी सी विभाजन रेखा जरूर खिंच जायेगी, प्रकृति और इन्सान के बीच एक भयंकर सी खाई जरूर होगी। आने वाली सदी की यह एक दुखद तस्वीर है, जिससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

असांस्कृतिक मूल्यविहीन जीवन और वर्जनाहीन विरासतों तथा ह्रासोन्मुखी नैतिकता के साथ हम अगली सदी में प्रवेश कर रहे है। ऐसे नाजुक क्षण में हमें भारतीय वांगमय के उस आह्वान की याद आती है, जिसमें सम्पूर्ण वसुधा को परिवार माना गया है और **''सर्वे भवन्तु सुखिनः''** की सुखद और कल्याणमयी परिकल्पना की गयी है।

निश्चय ही अगली सदी का भारतीय समाज अपने पुरातन, गौरवशाली मूल्यों, स्थापनाओं की विरोधी धारा में जी रहा होगा। आइए, ऐसे क्षण में हम अपनी पुरातन थाती और वैदिक ऋषियों की वाणी की रक्षा का शुभ संकल्प लें।

'माता भूमिः पुत्रोऽहमं पृथव्याः।'

अर्थात्- 'धरती हमारी माँ है और हम धरती के पुत्र।'

'नमो मात्रे पृथिव्यै। नमो मात्रे पृथिव्यै।'

अर्थात्- माता पृथ्वी को प्रणाम है। माता पृथ्वी को प्रणाम है। ऐसी पवित्र अवधारणा के सन्देश से धरती और उसके संसाधनों के संरक्षण का हम शुभ संकल्प लें और उनका अनुपालन करें जिससे हरी-भरी धरती बची रह सके और परोक्ष रूप से मनु सन्तानें भी उसकी गोद में शरण पायें।

संदर्भ

१. पी डी शर्मा (2004). परिस्थितिकी एवं पर्यावरण। प्रथम संस्करण, रस्तोगी पब्लीकेशन ISBN 81-7133-694-9A
२. आर के निरंजन (2006). पर्यावरण अध्ययन। प्रथम संस्करण, प्रदीप पब्लीकेशन।

ISROSET ®

International Scientific Research Organization for Science, Engineering and Technology

International Journals

- Int. J. of Scientific Research in Chemical Sciences
- Int. J. of Scientific Research in Biological Sciences
- Int. J. of Scientific Research in Computer Science and Engineering
- Int. J. of Scientific Research in Mathematical and Statistical Sciences
- Int. J. of Scientific Research in Network Security and Communication
- Int. J. of Scientific Research in Physics and Applied Sciences
- Int. J. of Scientific Research in Multidisciplinary Studies
- Int. J. of Computer Sciences and Engineering
- World Academics Journal of Engineering Sciences
- World Academics Journal of Management
- Journal of Physics and Chemistry of Materials

Membership

ISROSET offers the following grades of membership:

- Fellow Membership Click here
- Life Membership Click here

Thesis Publication: Publish your work with ISBN

Thesis, Dissertations, Projects, Books, Souvenir, Conference Proceedings, Bulletin

We feel pleased to publish such type of book conferences, seminars, etc
Please contact us on: support@isroset.org, isroset@gmail.com

www.isroset.org, www.virtualcom.in